रामाश्रम सत्संग डिजिटल प्रकाशन

संत-वचन

(भाग ६)

(निर्वाणप्राप्त) परमसंत डा० श्री कृष्णलाल जी महाराज

के प्रवचनों का संकलन

रामाश्रम सत्संग (रजि०)

गाज़ियाबाद (उ०प्र०)

प्रकाशक :

अध्यक्ष एवं आचार्य, रामाश्रम सत्संग, (रजि०)

गाज़ियाबाद (उ० प्र०)

हर पुस्तक पढ़ने से पहले अशुद्धियों को शुद्ध कर लें । शुद्धि-पत्र पीछे है।

© *सर्वाधिकार सुरक्षित*

प्रथम संस्करण-२००० (१९८३)

द्वितीय संस्करण-१००० (१९८८)

प्राप्ति स्थान :

(१) व्यवस्थापक, राम-सन्देश मासिक पत्रिका

६-१० रामाकृष्णा कालोनी, गाजियाबाद (उ०प्र०)

(२) डा० करतार सिंह नेशनल होम्योस्टोस

फतेहपुरी, दिल्ली ।

मुद्रक :

विवेक मुद्रणालय, जी० टी० रोड. गाजियाबाद द्वारा मुद्रित ।

पाठकों से निवेदन

मेरे गुरुदेव परमसन्त डा० श्रीकृष्ण लाल जी महाराज, सिकन्द्रावाद (उ० प्र०) के प्रवचनों के चार भाग अब तक प्रकाशित हो चुके हैं। यह पाँचवा भाग आपकी सेवा में प्रस्तुत है। जो अन्य प्रवचन प्रकाशित होने के लिए उपलब्ध होंगे उन्हें भविष्य में छापने की आशा है।

पूज्य गुरुदेव के जितने प्रवचन छप चुके हैं उनमें से कुछ तो उनके स्वयं लेखनी बद्ध हैं और शेष भिन्न-भिन्न स्थानों पर सत्संग में उनके श्रीमुख से प्रस्फुटित किए गए हैं जो प्रेमी भाइयों ने यथा सम्भव लिख लिए हैं और कहीं-कहीं टेप भी किए गए हैं। परन्तु पुस्तक बद्ध होने से पूर्व उन सब की एक या दो रीडिंग श्री महाराज के सम्मुख हो चुकी हैं। यदि कोई त्रुटि रह गई हैं तो वह छपाई की ग़लती के कारण रह गई है। जब भी किसी प्रवचन की रीडिंग उनके सामने की जाती थी तो वे उसे बड़ी एकाग्रता (Rapt attention) से सुनते थे और प्रभु के ध्यान में लवलीन रह कर उस प्रवचन में प्रभु-प्रेम और ईश्वर कृपा का प्रतिष्ठान करते जाते थे। देखने वालों को तो ऐसा प्रतीत होता था कि वे ध्यान में समाधिस्थ हो गए हैं किन्तु ऐसा नहीं था। ईश्वर के ध्यान में तल्लीन रहते हुए भी वे इतने जागरूप रहते थे कि पढे जाने वाले मैटर में कोई छोटी सी भी त्रुटि, चाहे वह 'हाँ 'न' की ही हो, तुरन्त पकड़ कर सुधरवा देते थे। अतः पाठकों से निवेदन है कि उनके प्रवचनों अथवा उनकी लिखी अनेकों पुस्तकों में से किसी में यदि कोई बात समझ में न आये तो उसे ग़लत न समझें मनन या अभ्यास करते करते ईश्वर कृपा से कोई समय ऐसा आयेगा कि वह बात स्वयं समझ में आ जायगी। सन्तों के मुख से कोई बात ग़लत नहीं निकलती।

दिल्ली
१-१-१९८८

दासानुदास
करतार सिंह

विषय-सूचि

1. गुरु में प्रीति और प्रतीत आये बिना उन्नति नहीं होती !
2. गुरु-शिष्य का अन्तरंग प्रेम ४
3. हमारा इष्ट क्या है ? हमारा तरीका और सत्संग
4. अभ्यास क्यों किया जाता है ? १७
5. यम-नियम का पालन आवश्यक है। २१
6. चाह और दीनता ० २७
7. असली विद्या ., ३५
8. मन की चौकसी ४२
9. चेतावनी - ४७
10. इजाजत ४८
11. रामाश्रम सत्संग के शिक्षक वर्ग के लिये अन्तिम आदेश ५१
12. परमार्थ में मन का आलस्य. ५
13. आन्तरिक अभ्यास के दो प्रारम्भिक चक्र ६१
14. सन्तों का तरीका ६६
15. प्रेम और प्रीति ७६
16. ईश्वर बनना नहीं है उसे पाना है । ८६
17. प्रार्थना ६१

एक प्रेम के नाते को छोड़कर मैं और किसी नाते को नहीं जानता। केवल प्रेम और वह भी निस्वार्थ प्रेम । जो लोग बिना अपने स्वार्थ के मुझे प्रेम करते हैं, चाहे वे सज्जन हैं या दुष्ट, मैं उन्हें प्रेम करता हूँ। वे मेरे हैं और मैं उनका । वे सदैव मुझ पर आश्रित रह सकते हैं और वे देखेंगे कि मैं सदैव उनकी सेवा के लिए प्रस्तुत हूँ ।

---परमसंत **डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज**

सिकंदराबाद उप्रा

(जन्म १९-१०-१८९४ - निर्वाण १८-०९-१९७०)

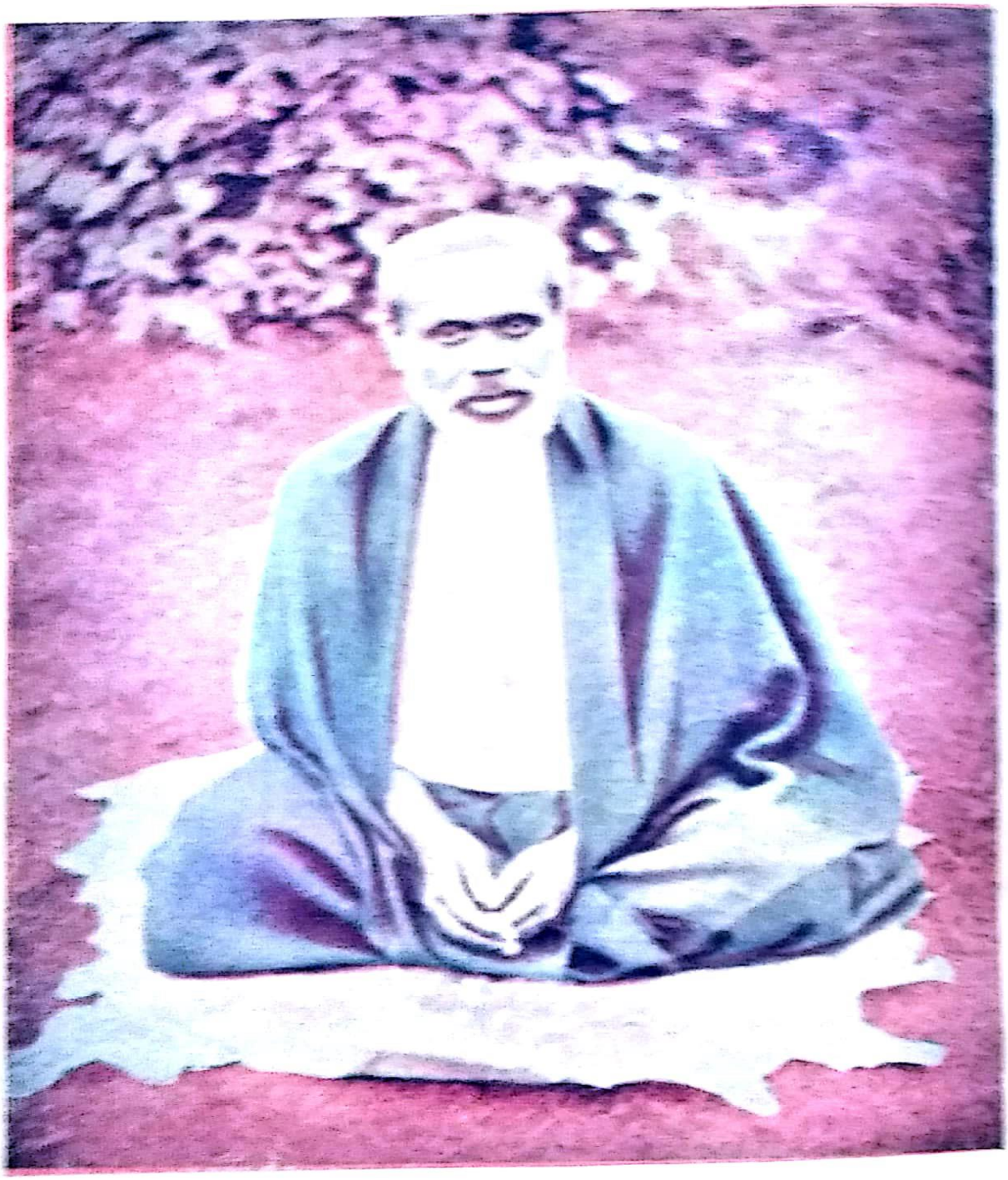

समर्थ गुरु महात्मा रामचन्द्र जी महाराज (उर्फ लाला जी)
फतहगढ़, उ०प्र० निवासी (जन्म १८७३–निर्वाण १९३१)

गुरु में प्रीति और प्रतीति आये बिना उन्नति नहीं होती

(नई दिल्ली, दि० १७-११-६८)

समझते हो गुरु को मनुष्य, और चाहते हो कि वह ईश्वर का दर्शन करा दे ? पहले गुरु से प्रीति करो और उसकी बात पर विश्वास करो , तब प्रतीति पैदा होगी । बिना प्रतीति के गुरु को ईश्वर नहीं समझोगे और जब तक यह भाव नहीं आयेगा तब तक ईश्वर का अनुभव कैसे होगा ? दोनों का medium (माध्यम) जब तक एक नहीं होगा, तब तक दर्शन नहीं होंगे । यह doubt (शंका) कि यह इन्सान हैं , दर्शन करा सकेंगे भी या नहीं, जब तक मौजूद हैं, तब तक गुरु राग़िब (ढुरना, कृपा दृष्टि करना) नहीं होगा तो दर्शन कैसे होंगे ? गुरु में चाहे सब कुछ सामर्थ्य हो, जब तक शिष्य में प्रीति और प्रतीति नहीं होगी तब तक फ़ायदा नहीं होगा । इसीलिए भगवान कृष्ण ने कहा है कि जो जिस भाव से मुझे भजता है, मैं उसी रूप में दर्शन देता हूँ। सन्त कबीर कहते हैं -

" गुरु को मानुष जानते 'कबीर' ते नर अन्ध"

पढ़े लिखे लोगों को faith (विश्वास) मुश्किल से होता है । जब अक्ल उल्टा समझती है, अविश्वास हो जाता है और आदमी यह समझने लगता है कि वैसे ही ढोंग बना रखा है , एक जमात इकट्ठी कर रखी है, इत्यादि । शिष्य की इस भावना को गुरु समझता है और यह जानता है कि इसे विश्वास नहीं है, लेकिन गुरु खोलकर ऐसा नहीं कहता । उसके हृदय में शिष्य की भलाई निहित होती है, वह सोचता है कि इस ओट में कुछ तो करता है । यदि इससे साफ़ कह दिया जायेगा तो यह करेगा ही नहीं और जो थोड़ा बहुत रास्ता वह चल रहा है उससे भी विमुख हो जायगा ।

Blind faith (अन्ध-विश्वास) शुरू-शुरू में करना ही पड़ता है, किसने अपने बाप को देखा है कि यह मेरा बाप है ? सिर्फ़ माँ के कहने पर मान लेता है कि यह मेरा बाप है। बच्चे से माँ कहती है –" कौआ " और वह मान लेता है कि "कौआ" है। गुरु ने कहा और शिष्य ने मान लिया, तब फ़ायदा होगा। algebra (बीजगणित) में ' X' मान लेते हैं, फिर सवाल निकलता है, और जो जवाब निकलता है उसका मिलान करके देखते हैं, तब सही निकलता है। अगर 'X" नहीं मानें तो सवाल नहीं निकलेगा।दुनियाँ के मामलों में भी विश्वास करना ही पड़ता है। विश्वास पर ही सारा लेन-देन और लौकिक व्यवहार चलता है। अगर अँग्रेज़ी पढ़ने जाओ तो अध्यापक कहेगा - "कहो A, B, C, D अगर आप कहें कि मैं क्यों कहूँ , कुछ और क्यों न कहूँ , तो मामला बिगड़ जायेगा। फिर तो अँग्रेज़ी पढ़ ली ?

पढ़े-लिखे लोगों में blind faith (अन्ध-विश्वास) नहीं जागता। इसलिए सबसे ज़्यादा दिक़्क़त पढ़े-लिखों को mould (सुधार) करने में आती है। एक तो वे यह समझते हैं कि दुनियाँ में धोखा बहुत है और फिर हर चीज़ को वे अपनी अक़्ल पर तोलते हैं। जब तक अभ्यास करके मन शान्त न हो जाय, और आत्मा का ज्ञान न खुलने लगे, तब तक तुम यह नहीं समझोगे कि जो कुछ गुरु कहता है वह सही है। जब तक बुद्धि शुद्ध न हो जाय तब तक गुरु की बात पर blind faith (अन्ध-विश्वास) करना ही पड़ेगा।

हमने जो कुछ भी हासिल किया वह गुरु पर faith (विश्वास) रख कर किया है। जो कुछ उन्होंने कहा हमने उसको मान लिया। कभी negative faith (विपरीत विचार) पैदा नहीं किया। हमने मान लिया। जब हमें स्वयं ईश्वर का अनुभव हो गया तब पूरा यकीन हो गया कि जो यह कहते थे वह बिलकुल ठीक है।

(इस लेख में पूज्य गुरु महाराज ने blind faith शब्द का प्रयोग अनेक बार किया हैं जिसका हिन्दी में अर्थ "अन्ध विश्वास " किया गया हैं। अन्धविश्वास शब्द का एक अर्थ 'superstition भी हैं। पूज्य गुरुदेव ने जिस अर्थ में blind faith शब्द का प्रयोग किया हैं उसका आशय यह हैं कि - गुरु की बात पर आँख बंद करके अर्थात बिना किसी ना नुकर के विश्वास कर लेना।)

सन्त चरनदास जी कहते हैं -

गुरु को रामहि जान कृश्न सम जानिये।
गुरु नरहींह औंतार जो बावन मानिये।
गुरु को पूरन जान जो ईश्वर रूप ही।
सब कुछ गुरु को जान यह बात अनूप ही।
हरि गुरु एकहि जान यह निश्चय लाइये।
दुविधा ही को बोझ बेगि बगाईये॥

(२)

गुरु शिष्य का अन्तरंग प्रेम

(रुड़की दि० २१-३-१९६१)

निराकार, दयालदेश का मालिक और देहधारी गुरु, सब एक ही हैं। सबका एक समान आदर और एक समान उपासना होनी चाहिये। यह कैसे मुमकिन है कि हम गुरु को प्यार करें मगर दयाल पुरुष और खानदान के बुजुर्गों से प्यार न हो ? अगर सत्संगी भाइयों में आपस में प्यार न हो तो यह ज़रूर हैं कि उन्हें centre (अपने गुरु) से प्यार नही हैं। इसी तरह मज़हबी किताबें हैं उन सब में एक सी ही श्रद्धा हो। कुरान शरीफ में एक आयत आई है – " ऐ मोहम्मद, तेरे जैसे बहुत से पैगम्बर पैदा हुए हैं जिनमे से बहुत सों की तुझे खबर है और बहुत सों की नहीं है। सब मुसलमानों से कह दो कि सब पैगम्बरों की एक सी इज्ज़त करें।" इसलिए सारे अवतारों, संतों और धार्मिक ग्रंथों को समान आदर भाव से देखना चाहिये।

असली candidate यानी जिज्ञासु कौन है ? जिसको ईश्वर से मिलने की सच्ची ख़्वाहिश है और तड़प है और जो अपनी ज़िन्दगी से बेज़ार है। मौजूदा हालत चाहें उसकी कुछ भी हो, चाहें वह अच्छे आचरण का हो या न हो अगर उसमें सच्चा प्रेम है, तड़प है तो वही उसे हर हालत में निकालकर ले जायेगी। यह मार्ग प्रेम का है। अगर आपके दिल में गुरु का प्रेम है तो आप उससे प्रेम करेंगे और वह आपसे प्रेम करेंगे। जब हालत ऐसी बन जाये कि गुरु से निरन्तर प्रेम की डोर लगी रहे और हर वक़्त उसका ख़्याल बना रहे तो यदि दुनिया के ख़्याल आते भी रहें तो कोई हर्ज़ नहीं। अगर ऐसा अभ्यासी गुरु के दर्शनों को न भी जाए तो कोई हर्ज नहीं। लेकिन जिनको अभी ऐसा प्रेम पैदा नहीं हुआ है और वह फ़ायदा उठाना चाहते हैं तो उनके लिए ज़रूरी है कि तीन- चार महीने में एक बार गुरु के पास जाते रहें। कुछ समय भले ही ज्यादा लग जाये, लेकिन फ़ायदा होगा। गुरु से प्रेम और

नाता जुड़ने की पहचान यह है कि जो ख़्याल गुरु के दिल में पैदा हो वह शिष्य पर उतर जाये। फिर उस ख़्याल की ख़त के ज़रिये या मिलने पर confirm (पुष्टि) कर लें। इसका मतलब है कि शिष्य का निजी रूप जागृत अवस्था में ले गया है और गुरु की तालीम (शिक्षा) क़बूल कर रहा है। लेकिन एक बात हमेशा ध्यान रखना चाहिये कितना ही आपका अनुभव खुल जाये, अन्दर से कितने भी directions (आदेश) मिलें, लेकिन शैतान बडा जबरदस्त है। वह कहीं भी धोखा दे सकता है। इसलिए अभ्यासी चाहें कितना भी ऊँचा हो और ख़्याल से गुरु की कितनी भी नजदीकी हो, उसे physically (स्थूल रूप में) गुरु के दर्शन साल में दो बार कर लेने चाहिये। आपके सिलसिले में, बल्कि हरेक सिलसिले में, गुरु की बहुत importance (महत्ता) है। गुरु के निजी रूप का (प्रकाश रूप का) नूरानी रूप का ध्यान किया जाता है। चाहें ध्यान में पहले उस का physical-body (स्थूल शरीर) दीखता हो मगर वह नूरानी (प्रकाश रूप) है। अगर गुरु की तस्वीर का ध्यान करते हो तो यह तो मूर्ति पूजा हो गयी। जिसका ध्यान करोगे वही मिलेगा। अगर तस्वीर या मूर्ति का ध्यान करते हो तो मरने के बाद वही वही मिलेगा। इज्ज़त तौर पर घर में तस्वीर का रख लेना और बात है। सामने बैठ कर भी जो ध्यान किया जाता है वह उनके नुरानी रूप (प्रकाश रूप) का ध्यान किया जाता है। वह प्रकाश बराबर सूक्ष्म होता जाता है और आगे चलकर साधक को सतपुरुष से मिले देता है।

तीन फनाईयतें (लय अवस्थाए) हैं। पहले अपने आप को गुरु में लय करो, फिर अनामी पुरुष में और फिर ईश्वर में मुसलामानों में भी यही बात है। 'ला इलाह इल्लिल्लाह' अर्थात कुछ नहीं है सिवाय अल्लाह के। पहले अपने आप को अपने पीर मुर्शिद में, फिर रसूल में और फिर अल्लाह में फ़ना कर दो क्योंकि सिवाय उसके और कुछ (सत्य) नहीं है। लेकिन रसूल का

मतलब सिर्फ हजरत मोहम्मद साहब से ही नहीं है। हिन्दू संतों में भी राम की उपासना को मुख्यता दी गई है। कहते हैं –

एक राम दशरथ घर डोले

एक राम घाट घाट में बोलै।

एक राम का सकल पसारा,

एक राम त्रिगुण से न्यारा।

हमारा लक्ष्य तो वह राम है जो त्रिगुण से न्यारा है। वह अरुपा है अलख है अगम है। संतों का यही आधार है। इसलिए नुरे मोहम्मदी असली रसूल है, वही सबका आधार है। पहले स्थूल गुरु का ध्यान आता है और वही प्रकाश गुरु के ध्यान में बदल जाता है। पहले फनाइयत (लय) गुरु में होती है और जब प्रकाश रूप में गुरु दर्शन हो जाते हैं तो गायबाना (अप्रत्यक्ष) तौर पर उसे गुरु से मदद मिलने लगती है। इससे यह निश्चय हो जाता है कि रास्ता ठीक है और सही है। जब ऐसा परिचय मिलने लगे तब यह विश्वास करें कि यह पूर्ण गुरु है। इसी को प्रतीत कहते हैं। जब तक गुरु का सत्संग नहीं करेगा तब तक प्रीति नहीं पैदा होगी। बिना प्रीति के प्रतीत यानी विश्वास पैदा नहीं होगा और बिना गुरु में विश्वास आए ईश्वर में विश्वास नहीं होगा। मगर प्रतीत आने के बाद भी अभ्यासी गिर जाते हैं। इसका कारण यह है कि माया बड़ी प्रबल है। उसने तमाम ब्रह्मांडों पर पर्दा डाल रखा है, सबको भ्रमा रखा है। यह परमात्मा की बड़ी कृपा है कि वह मनुष्य को इसके जाल से निकाल देता है वर्ना आदमी की अपनी क्या ताक़त है जो इसके जाल से निकल सके।

और तरीक़ों में सिर्फ रास्ता बताया जाता है और अभ्यास कराया जाता है लेकिन हमारे यहाँ इससे आगे भी कुछ और है। गुरु अपनी कृपा, तवज्जह और इच्छाशक्ति से शिष्य के सतोगुणी मन को अपने मन में मिला कर ऊपर को ले जाता है जिससे शिष्य की आत्मा थोड़ी देर के लिये

बाहरी atmosphere (वातावरण) से उठकर ब्रह्माण्डी मन का आनन्द लेने लगती है और इससे जल्दी तरक़्क़ी होती जाती है।

अगर किसी ने गुरु से निस्बत (आंतरिक सम्बन्ध) हासिल कर ली है तो वह दूर बैठे भी फ़ायदा उठा सकता है। हमें एक वाका (घटना) याद आ गया। जब हम फतेहगढ़ में हाईस्कूल में पढ़ते थे एक दिन हमारे पैर में चोट लग गयी। गुरुदेव उन दिनों कानपुर गये थे। उन्हें घर पर न पा कर हमें बड़ा अफ़सोस हुआ। हम अपने घर पर गये तो बाप ने मारा। बोर्डिंग हाउस में आये जहाँ हम रहते तो रात हो गयी थी और हमारे पैर में बहुत दर्द हो रहा था। हमने स्टूल पर पैर रख कर गर्म पानी से सेकना शुरू किया। इतने होस्टल के सुपरिटेंडेंट आ गये और नाराज़ होने लगे कि स्टूल को मत खराब करो। दो चार सख्त बातें भी उन्होंने कहीं। सबेरे इम्तेहान था। हमे बहुत दुःख हुआ कि हमारा तकलीफ के मारे यह हाल है और कोई हमदर्द नहीं है। अगर एक हमदर्द है भी तो वह यहाँ नहीं है। हम अपने गुरुदेव को याद कर के रोने लगे और रोते रोते नींद आ गयी। सबेरे को उठे तो दर्द कम था और हालत अच्छी थी। इम्तेहान दिया। जब गुरुदेव लौट कर आये और हम दर्शन करने गये तो बड़े प्रेम पूर्वक पूछा –"उस रात तुम इतना क्यों परेशान थे ? हम संध्या कर रहे थे और तुम सामने आ कर खड़े हो गये। हमने तवज्जह दी और तुम वहाँ से चले गये।"

कहने का मतलब यह है कि जब निरन्तर प्रेम से गुरु और शिष्य के बीच सम्बन्ध स्थापित हो जाता है तो एक के विचार दूसरे पर उतर आते हैं गुरु रूप में परमात्मा आकर हमारी सहायता करता है। मगर शर्त यह है कि प्रेम सच्चा हो, कोई ग़रज़ (स्वार्थ) न हो और अगर ग़रज़ भी हो तो प्रेम पाने की ख़्वाहिश हो। गुरु का प्रेम ही ईश्वर प्रेम में बदल जाता है। हमें तो जो कुछ भी फ़ायदा हुआ प्रेम से ही हुआ। हमारे गुरुदेव क्या थे ? जो कुछ थे वे ही जानते हैं। अगर खुदा कहूँ तो कुफ आयद होता है (नास्तिक कहलाता हूँ) उन्होंने हमसे कई बार कहा 'जो चाहो सो मांग लो' लेकिन

हमने उनसे कुछ न माँगा। हमे अगर कभी तकलीफ भी होती थी। तो हम कभी उन्हें खबर नहीं करते थे। वे खुद ही चले आते थे। अगर सच्चा प्रेम है तो ईश्वर ख़ुद ही खिंचा चला आता है।

परमार्थ के काम में जल्दबाजी नहीं होती। Full determination (दृढ संकल्प) होना चाहिए। कुछ हर्ज़ नहीं अगर तरक्की नहीं होती है। जब चल पड़े तब चलते जाओ , रास्ते से मत हटो, कामयाबी शर्तिया (सफलता अवश्य) होगी। सभी शुरू में नकल (अनुकरण) करते हैं , असल (यथार्थ) तो बाद में आती है। सच्ची भक्ति कोई कोई करता है। लड़कियां बचपन में झूठा ब्याह रचती है। फिर एक दिन अपना ब्याह भी कर लेती है। गुरु के दरवाजे से न हटें। कहा है – "द्वार धनी के पड़ा रहे , धक्का धनी का खाय।" मुसीबतें आती है , गुरु इम्तेहान भी लेते है , मगर चाहे कुछ भी मिले सुख या दुःख वह तुम्हारी जान है। सबसे ज्यादा उसी को अज़ीज़ (सर्व प्रिय) रखो।

(३)

हमारा इष्ट क्या है ?

हमारा तरीका और सत्संग

(रुड़की, प्रातः दिनांक ३०-३-५१)

हमारा इष्ट क्या है ? जहाँ आनन्द ही आनन्द हो, ज्ञान ही ज्ञान हो और आजादी हो । जो इन तीनों का स्रोत है वही हमारा इष्ट है । दुनियां में असली सुख नहीं है । अगर सुख है भी, तो वह नाशवान है वरना दुःख ही दुःख है । ज्ञान अगर कहीं है तो स्रोत में है वरना अज्ञान ही अज्ञान है, अन्धकार ही अन्धकार है | असलियत का पता ही नहीं है । जिसे देखो बुद्धि के फेर में पड़ा है | असली आनन्द वह है जिसे प्राप्त करने के बाद किसी दूसरे आनन्द की ख्वाहिश न हो । आनन्द दो तरह का होता है (१) मन का आनन्द जो कभी स्थायी नहीं रहता, हमेशा बदलता रहता है । यह क्या दोस्ती है कि आज दोस्ती हुई, कल जुदाई हो गई । यह क्या सुख है कि आज लखपति हैं और कुछ दिनों बाद भिखारी बन गये। (२) दूसरा आनन्द आत्मा का आनन्द है, जो सदा स्थायी और सदा एक-रस रहता है । इसमें कोई तब्दीली नहीं होती । इस संसार रूपी जंजाल से, जिस में दुःख ही दुःख है, क्लेश ही क्लेश है, जो अज्ञानमय है, जहां अन्धकार है और जहां आवागमन का चक्र बराबर चलता रहता है, वहाँ से अपने आपको निकाल कर आत्मा के आनन्द में जोड़ देना है जो हमेशा रहने वाला है, जहाँ ज्ञान ही ज्ञान है, जहां आज़ादी ही आज़ादी है और जहाँ पहुँच कर आदमी आवागमन के चक्र से छूट जाता है ।

इसके दो रास्ते हैं । एक को प्रवृत्ति मार्ग कहते हैं और दूसरे निवृत्ति मार्ग । एक है अनुराग, दूसरा है वैराग । एक Positive (स-कार) है दूसरा Negative (न-कार) है । निवृत्ति मार्ग में प्रत्येक वस्तु को Negative (न-कार) करते चलते हैं अर्थात "कुछ नहीं है" 'जगत मिथ्या है' ।

जिस को देखता है उसी में असारता पाता है, जिस चीज़ को पकड़ता है वही टूटी हुई निकलती है। हर चीज़ में देखता है कि वह छुटने को है तब कहता है कि जगत मिथ्या है । जहाँ हर क्षण change (परिवर्तन हो रहा है वहाँ कौनसी चीज ever lasting (सदा रहने वाली) है, जब यह सोच विचार विवेक बुद्धि द्वारा चित्त में बैठ जाता है, तब वैराग पक्का होता है। मुसलमानों में भी पहले ला इलाह" (कुछ नहीं है सिवाय अल्लाह के), फिर आता है 'अल्लाह'। पहले दुनियाँ को नफ़ी (नकार) करके चलना पड़ता है दूसरा अनुराग है जिसे सूफियों में 'असबात' कहते हैं और दूसरे शब्दों में इसे प्रवृत्ति मार्ग भी कहते हैं। यह positive (स-कार) है। जब तक मन की दुनियाँ का अन्त नहीं होगा, जब तक आप ईश्वर से मिलने के लिए तड़पेंगे नहीं, तब तक इस रास्ते पर नहीं आयेंगे । जब लोवर और beloved (प्रेमी और प्रोतम) का प्यार, पतिव्रता पत्नी और पति का प्यार, या और कोई प्यार, सब इकट्ठे नहीं हो जाते तब तक सच्चा वियोग नहीं होता और जब ऐसा वियोग हो जाता है तब पुकार ने से ईइवर मिलता है। सब चीज को छोड़कर एक ईश्वर से प्रेम करो, मन जहाँ-जहां फेंसा हुआ है वहाँ से खेंच कर, उसकी बिखरी हुई शक्तियों को बटोर कर एक ईश्वर के चरणों में लगा दो । उसके ख्याल में और उसके प्रेम में महव (तल्लोन) हो जाओ कि सिवा उसके और किसी का ध्यान न रहे । यह दुनियां तो जंसी है वैसी ही रहेगी और इसका कोई काम बन्द नहीं होगा । हमें इससे क्या, हमें तो अपने प्रीतम से काम है।

मालिक तेरी रज़ा रहे, और तू ही तू रहे ।

बाकी न मैं रहूँ , न मेरी आरज़ू रहे।

यही प्रवृत्ति मार्ग है, यही मुसलमानों का असबात है, यही positive (स-कार) रास्ता है और यही सन्तों का प्रेम-मार्ग है । रास्ता आसान नहीं है । इसमें वृढ़ विश्वास और अभ्यास की बड़ी जरूरत है। रुकावटे आती हैं और ऐसा लगता है कि तरक्की नहीं हो रही लेकिन निराश नहीं होता चाहिए ।

एक साहब ने किताब में पढ़ा कि राम नाम का जाप करने से ईश्वर के दर्शनआ होते हैं । मन्दिर गए, आखें बन्द करके बेठे और जाप करने लगे। दस पन्द्रह मिनट बाद आखें खोल दों कि ईश्वर के दर्शन नहीं होते और सोच लिया कि रास्ता गलत है। यही हाल अभ्यासियों का है । अभ्यास करते नहीं हैं और चाहते हैं कि ईश्वर के दर्शन हों जाएँ, आत्मा के पर्दे अभी हटे नहों हैं, मन को ख्वाहिशें (इच्छाएं) गई नहीं हैं और रास्ते को गलत समझ बैठे ।

हम खुदा रूवाही व हम दुनियाये दू',

ई खयालास्तो मुहालस्तो जनूँ।

भावार्थ- ईश्वर को भी पाना चाहता है और दुनियाँ को भी चाहता है, यह पागलपन नहीं तो और क्या है ?

किसी चीज़ के attachment (लगाव) का पता उसकी मौजूदगी में नहीं लगता । जब वह चीज़ नहीं होती या उससे seperation (वियोग) हो जाता है, तब पता लगता है कि attachment यानो लगाव कितना है और बैराग कितना है । दुनिया अगर बुरी लगती है, तो ईश्वर मिलना चाहिए, आनन्द जिसको हम को तलाश है वह मिलना चाहिए । प्रगर नहीं सिलता तो यह कैसा बैराग है ? यह तो लखूटा बैराग है, मन्द बैराग है । जब किसी चीज से हम प्रेम करते हैं और वह हमसे छूट जाती है तो दुःख होता है और वैसी ही दूसरी चीज मिल जाने पर वह वैराग जाता रहता है । यदि कोई स्त्री विधवा हो जाय तो उसे बड़ा दुःख होता है लेकिन कुछ दिनों बाद अगर वह पुनर्विवाह कर लेती है तो वह वैराग जाता रहता है। असली वैराग वह है कि सब चीज मोजूद हैं लेकिन किसी में तबियत नहीं लगती, पागल कुत्तों की तरह इसलिए मारा मारा फिरता है कि किसी तरह आत्मा का आनन्द मिल जाय। अगर दुनियाँ की सब चीजों से वैराग हो गया है लेकिन ईश्वर से अनुराग नहीं हुआ तो यह वैराग Incomplete (अधूरा) है । वैराग के बाद अनुराग होना चाहिए । कहने का

मतलब यह हैं कि रास्ता बहुत लम्बा हैं । जो जल्दी करेगा वह छोड़कर भाग जायगा । अगर दिन रात अभ्यास करेगा तो पांच छे जन्म लगना मामूली बात हैं ।

एक रास्ता बुद्धि का हैं और एक मन का हैं यानी एक त्याग का हैं और एक प्रेम का हैं। त्याग का रास्ता यह हैं कि हर चीज को देखते चलो कि किस चीज में कितना आनन्द हैं ? एक दो बार देख कर नतीजा निकाल लो कि इसमें स्थायी आनन्द नहीं हैं तो फिर उसे छोड़ दो । दोस्तों को देखो, रिश्तेदारों और सगे सम्बन्धियों को देखो, जहाँ कहीं तुम्हारा और उनका Interest (स्वार्थ) clash करेगा (टकरायेगा) तो तुरन्त दोस्ती या रिश्तेदारी में फर्क आ जायगा, सब मुह मोड़ जायेंगे । इससे यह नतीजा निकालो कि दुनियाँ में सब ऐसे ही हैं। चावल का एक दाना देखा जाता हैं । दुनियाँ में जिस चीज़ में आनन्द क्षण भंगुर हो उसे तर्क (त्याग) कर दो । यह बुद्धि का मार्ग हैं। मगर इसका नतीजा तब तक कुछ नहीं हैं जब तक ईश्वर से प्रेम न हो । Temporary (अस्थाई) तौर पर कभी आत्मा का प्रकाश दिखाई देता हैं और कभी नहीं । चन्द्रमा का प्रकाश दिखाई देता हैं लेकिन बादल आकर उसे ढंक लेते हैं। इससे घबड़ाओ मत । कोशिश करते रहो, वक्त लगेगा और एक न एक दिन कामयाबी होगी । यह Negative (नकारात्मक, नफी) तरीका हैं ।

दूसरा तरीका प्रेम का हैं! यह positive (सकारात्मक) हैं । सौभाग्य से अगर कोई सन्त मिल जाय तो उसकी सतसंगत में बैठ जाओ और अपने मन को देखो । बगैर उसकी तवज्जह किए हुए उसके अन्दर से आत्मा के प्रकाश की धारें निकलती रहती हैं जसे हीरा कहीं भी रखा हो उसमें से प्रकाश की किरणें निकलती हैं जिनके प्रभाव से मन की चंचलता और परेशानियाँ शान्त हो जाती हैं। अगर तुम्हें आनन्द की तलाश हैं तो वह असली सन्त के पास मिलेगा। आत्मा पतिब्रता स्त्री की तरह हैं। या तो वह सोई रहतो हैं और मन काम करता हैं, या वह ईश्वर से प्रेम करेगी, सिवाय उसके किसी और से प्रेम नहीं करेगी ।

सन्त के पास बैठ कर आनन्द का अनुभव होता है। अगर सौभाग्य से ऐसा कोई वक्त का पूरा सन्त मिल जाय वही गुरु हैं । वह तुम्हें, भवसागर से पार करने आया है। उससे प्रेम करो । अगर तुम्हारी आत्मा दरअसल परमात्मा के पाने की इच्छुक है तो वह उससे चिपट जायगी । आमतौर पर किसको इसकी ख्वाहिश है ? सब मन में भ्रम रहे हैं। atmosphere (वातावरण) दूषित है, कैसे आनन्द का अनुभव होगा ? सन्त के पास जाकर बेठे रहो और मन में कोई ख्याल मत आने दो। फायदा हो जायगा । बेवकूफ लोग यह समझते हैं कि हम सन्त के पास गये लेकिन उसने हमसे बात भी नहीं की । बात की, या नहीं की, इससे तुम्हें क्या मतलब ? हर वक्त उसके अन्दर से आत्मा के प्रकाश को झौर आनन्द की शीतल धारें निकल रही हैं जिनसे फायदा हो रहा है। सूरज चमक रहा है। अगर तुमने अपनी आंखें बन्द कर रखी हैं तो इसमें सुरज का क्या दोष है ? क्या वह किसो से बात करता है ? नहीं ! लेकिन उसके प्रकाश और गर्मी से सबको फ़ायदा होता है। हमारे गुरुदेव बहुत शान्त स्वभाव के थे और बहुत कम बोलते थे । उनके पास बैठने में ऐसा लगता था कि आनन्द का दरिया (नदी) बह रहा है, शंख से आंख मिली नहीं कि धड़ाम से गिर पड़े । ऐसा लगता था कि शराब की बोतलें की बोतलें उड़ेल दी हों । कभी उन्होंने अपनी जूबान मुबारिक (श्रीमुख) से character formation (चरित्र निर्माण, इखुलाक की दुरुस्ती) के लिए नहीं कहा । उनकी सत्-संगति में बैठे बंठे ही उनकी कृपा से सब बुरी आदतें छूट गयीं । यह फकीरी है । ऐसा महापुरुष मिल जाय तो उससे प्रेम पैदा करो ।

जब तक इन्द्रियों और बुद्धि के पर्दे शुद्ध नहीं हो जायेंगे तब तक अत्मा का प्रकाश नहीं झलकेगा । दिल के अन्दर दो dots (बिन्दु) काले हैं, जो आत्मा का प्रकाश नहीं आने देते । जब उनकी सफाई होकर हमारी सुरत आत्मा के पास जाती है तब असली आनन्द मिलता है । वैसा आनन्द हम दुनियां

में नहीं पाते । आहिस्ता आहिस्ता (उत्तरोत्तर) दुनियाँ से नफ़्रत (उपरति) होने लगतो है । यहाँ अनुराग पहले है और वैराग बाद में ।

प्रकाश रूप के दर्शन गुरु के अन्दर ही होते हैं । गुरु के स्थूल शरीर के भ्रन्दर, परदे में क्या है ? (१) अन्नमय कोष, (२) आत्मा । मिट्टी के शरीर को मूर्ति बनाये ईश्वर बैठा हुआ है । अगर प्रकाश के रूप में दर्शन होते हैं तो रास्ता ठीक है । अगर जिस्म (स्थूल शरीर) के दर्शन होते हैं तो यह गिरावट है क्योंकि वह स्थूल है । अगर शक्ल (गुरुमूरति) के दर्शन नहीं होते सिर्फ ख्याल आता है तो यह ऊँची चीज़ है गुरु की सोहबत (सत्संगति) में बेठकर मन शुद्ध होता है । एक अभ्यास है दूसरा फज्ल (कृपा) है, एंक कस्बी है दूसरा कश्फी है; एक हठयोग है दूसरा राजयोग है । Aim यानी लक्ष्य दोनों का एक ही है, आत्मा को ऊपर चढ़ा देना और अपने प्रीतम से मिला देना । प्रेम अथवा गुरु कृपा के सहारे चलने में जो तक (त्याग) है उसके साथ खुशी है और अभ्यास द्वारा तक (त्याग) के साथ दिक्कत है। गलत कोई तरीका नहीं है। यह आपको Right (अधिकार) है कि अपने तरीक़े को अच्छा कहो, लेकिन किसी दूसरे फ़ूकीर या सन्त के रास्ते को गुलत मत कहो । हर मजहब (मत) में सच्चाई है लेकिन तुमको वाकफ़ियत (जानकारी) नहीं है । कहा है--

जो पै चन्द कलंक है, तऊ उजियारा होय ।

सन्त में अगर कोई बुराई देखते हो तो यह तुम्हारी अ्रक्ल का दोष है ।

इन दोनों रास्तों को अ्रपना लो । दुनियाँ की चीजों को आजमा कर छोड़ते चलो । सन्तों की सोहबत पकड़ लो । जो वह कहते हैं उस रास्ते पर चलो । वह अ्रगर मारते हैं, तो प्यार के कारण ऐसा करते हैं, तुम्हें सीधे रास्ते पर लाना चाहते हैं । दुनिया अज्ञान में फँसी है । यहाँ हर काम उल्टा है । यहाँ आदमी की पैदाइश भी उल्टी होती है। इस दुनिया से निकलो । मन की हालत को देखते चलो और गुरु की कृपा, उनके प्रकाश की धार (फैज) का अपने ऊपर अनुभव करते रहो । यही सतसंग है ।

गुरु कृपा तब तक होती है जब तक उसके कहने में चलते हो । वरना वह कृपा जाती रहती है । उसकी राजी में रजा रहो । गुरु का सिर्फ एक रूप है। उसका एक ही काम है कि बिछड़े जीवों को ईश्वर से मिला दे। इसलिए तुम उसके साथ Cooperate (सहयोग) करो। अगर उसके साथ Rebellion (विरोध) करोगे तो फायदा क्या होगा ? तुम्हें तोड़ कर रख देगा । जो उसने कहा है उसे दिमाग में रखो । ये देखते रहो कि इतना कर आये इतना और करना है । यही प्रेम का रूप है । सारा अभ्यास मन का है। मन की ही चौकीदारी करो । उसे तम से उठाकर रज पर और रज से सत पर ले जाओ । बुरे ख्यालों से उसे हटाकर अच्छे ख्यालों पर ले जाओ । अगर बुरे ख्याल आते हैं तो नाम का उच्चारण करने लगो । ख्यालात पुराने संस्कारों का नतीजा है, जिन्हें रोकना अपने बस की बात नहीं है, उन्हें पलट दो । मन के ख्यालों को पलट कर दुनियां की बजाय ईश्वर की तरफ लगा दो । साथ साथ यह भी समझ लो कि जो हो रहा है, उसकी कृपा है । दोनों तरीकों को अपनाओ । बिना दुनियाँ को छोड़े ईश्वर से प्यार नहीं होगा । बिना प्यार के दुनियाँ की चीज नहीं छूटेंगी । यही आपके यहाँ का तरीका है, यही सतसंग है ।

गुरुदेव सबका कल्याण करें ।

आरति करो मन आरति करो।

गुरु-प्रताप साधु की संगति, आवागमन ते छुटि पड़ो ॥

अ्नहद ताल आदि सुध बानी, बिनु जिभ्या गुन बेद पढ़ो ॥

आरपा उलटि आ्रातमा पूजो, त्रिकुटी न्हाइ. सुमेर चढ़ो ॥

सारंग सेति सुरति सों राखो, मन पतंग होइ अ्जर जरो।

ज्ञान को दीप बरै बिनु बाती, कह 'यारी' तह ध्यान धरो ॥

(४)

अभ्यास क्यों किया जाता है ?

रुड़की, दिनांक ३०-३-६९

सायंकाल ६ बजे

आत्मा के ऊपर दो गिलाफ़ (आवरण) चढ़े हुए हैं। एक माया का और दूसरा अंतःकरण का, जिसको साधारण भाषा में सब लोग मन कहते हैं। उसी का नाम महापुरुषों ने अंतःकरण रखा है, जिसके चार हिस्से माने गए हैं और हरेक हिस्से के कार्य (functions) के मुताबिक उनके अलग-अलग नाम रखे गए हैं जो इस प्रकार हैं – 1. मन, 2. बुद्धि, 3. चित्त और ५. अहंकार । जो भाग बाहर से ज्ञान हासिल करता है उसका नाम बुद्धि है। जो हिस्सा discuss करता है, संकल्प-विकल्प उठाता है उसको चित्त कहते हैं, जो हिस्सा record (लेखा-जोखा) रखता है, आगे के लिए याद रखता है, मेरे तेरेपन में फँसाता है, वह अहंकार कहलाता है। मन का यह मिलाजुला रूप इस मनुष्य शरीर में ही रहता है। शरीर भी तीन होते हैं।

(१) स्थूल शरीर जो पाँच तत्वों से से बना है - पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश। यह पाँच चीज़ें शरीर को बनाती हैं और क़ायम रखती हैं। जब शरीर निर्जीव हो जाता है तो ये पाँचों तत्व अपने मूल में समा जाते हैं। उसके बाद मनुष्य का दूसरा शरीर यानी जो आत्मामय मन का है, जो मन की अपूर्ण इच्छाओं के कारण कुछ समय के लिए घूमता-फिरता है और ऐसे घर में जन्म लेता है जहाँ पर वे इच्छायें पूरी हो सकें। आत्मा जब निर्लेप होती है यानी मन के चक्कर से छूट जाती है तो वही उसका असली रूप या तीसरा शरीर है जो ईश्वर का अंश है। जब तक आत्मा मन के चक्कर में रहती है तब तक मन उससे शक्ति लेकर अपनी ख़्वाहिशें (इच्छायें) पूरी करता है। मन के चंगुल से छूट जाने के बाद वह अपने मूल यानी असल - ईश्वर में समा जाती है।

अन्तःकरण के चार भागों में एक भाग जो मन है उसके तीन रूप हैं – 1. तम, 2. रज, और 3. सत। तम हमें इन्द्रिय भोगों में फँसाता है। यह मन की सबसे निकृष्ट अवस्था है। इसका स्थान मनुष्य की नाभि के ऊपर है, जहाँ घोर अंधकार है। इसके ऊपर Sternum (उरोस्थि) के नीचे cordial perplex (हृदय का स्थान) है जहाँ palpitation (धड़कन) होती है, वह रजोगुणी मन का स्थान है। यहाँ संकल्प-विकल्प उठा करते हैं। कभी कोई विचार आया, कभी कोई। कभी एक चीज़ चाहता है कभी दूसरी। रजोगुणी मन वाला हर वक्त किसी न किसी धुन में लगा रहता है। अगर एक हज़ार रुपया है तो चाहेगा कि दस-बीस हज़ार और हो जायें, अगर एक मकान मौजूद है तो चाहेगा कि दूसरा और बन जाये। इस तरह जीते जी कुछ ख़्वाहिशें पूरी हो जाती हैं और मरने के बाद जो ख़्वाहिशें बच जाती हैं उनका बण्डल बाँधे हुए आत्मा इधर-उधर भटकती फिरती है और ऐसा वातावरण खोजती है जहाँ जन्म लेकर उन ख़्वाहिशों को पूरा किया जा सके। तीसरा सतोगुणी मन कहलाता है जिसे ब्रह्माण्डी मन भी कहते हैं। इसका स्थान दोनों भोंहों के बीच में एक इंच नीचे की तरफ है, जिसे आज्ञा चक्र कहते हैं। यह आदमी को हमेशा सत यानी सच्चाई की तरफ़ ले जाता है।

जब हम जन्म लेते हैं तो हमारी सुरत (attention) इन्द्रियों (senses) के परदे पर जम जाती है और इसी से हम दुनियाँ में फँसते हैं। जन्मते ही जब आँख खुलती है तो हम देखते हैं - कौन है? माँ, जिनसे हमें आराम और सुख मिलता है उनसे हम प्रेम या मुहब्बत करते हैं और जिनसे दुःख मिलता है उनसे नफ़रत करने लगते हैं। यहीं से मन का काम शुरू हो जाता है और इसी मुहब्बत और नफ़रत को लेकर हम राग और द्वेष का जाल बना लेते हैं। इसी जद्दोजहद (संघर्ष) में ज़िन्दगी बीत जाती है। इन्द्रियों और मन के चक्कर में उलझे रहकर ही ज़िन्दगी ख़त्म हो जाती है।

इन्सान में तीन ख़्वाहिशें बड़ी प्रबल होती हैं – 1. हमें पूर्ण सुख मिल जाये, 2. हमें पूर्ण ज्ञान मिल जाये, और 3. हम हमेशा ज़िन्दा रहें। यह क्यों हैं ? हमारे अन्दर जो आत्मा है ये तीन उसी के गुण हैं, जो सत, चित, और आनन्द है। मन का परदा पड़ जाने से अज्ञानवश होकर वह मन के साथ रहने लगी और अपना असली रूप भूल गयी। इन तीनों चीज़ों (सत, चित, और आनन्द) को आत्मा उन चीज़ों में ढूँढ़ने लगी जो material (भौतिक) हैं। ऐसा करने में वह दुःख पर दुःख उठाती रहती है क्योंकि जिन चीज़ों में वह सुख तलाश करती है वे चीज़ें तो नाशवान हैं और हमारी ज़िन्दगी में तबाह (नाश) हो जाती हैं। जब उनसे मिलते हैं तो ख़ुशी होती है और बिछुड़ जाने से दुःख। हम भूल जाते हैं कि यह गुण आत्मा के हैं और जब तक आत्मा का असली रूप प्रकट नहीं होगा तब तक उनकी प्राप्ति हमें नहीं हो सकती। जब तक मन का पर्दा मौजूद है तब तक आत्मा का असली रूप और गुण प्रकट नहीं हो पाते। यही भूल है - जहाँ आत्मा है वहीं परमात्मा है, जहाँ सूरज है वही किरण है, जहाँ आत्मा बूँद रूप में मौजूद है वहीं ईश्वर सागर रूप में मौजूद है। आत्मा की तलाश कैसी ? अगर आत्मा न हो तो इस शरीर को कौन क़ायम रखेगा ? इसी के द्वारा सब तत्व (element) और सब शक्तियाँ इस universe (सृष्टि) में काम कर रही हैं। ऐसी complicated (गहन पेंचीली) मशीन है कि इसमें कई लाख पुर्जे automatic (स्वतः) काम कर रहे हैं। किस शक्ति से ? आत्मा की शक्ति से। जहाँ वह हटी वहाँ सब कुछ गायब , कोई वस्तु क़ायम नहीं रहेगी। आत्मा की या ईश्वर की तलाश कैसी ? वो तो हमारे अन्दर मौजूद है। आत्मा को पाना नहीं है – ईश्वर को पाना नहीं है – अभ्यास असली क्या है ? जिन वस्तु ने उन्हें ढंक रखा है उसे हटाना अभ्यास है। उसे हटाना अभ्यास है मन के पर्दो को हटा दो, आत्मा प्रकट हो जायेगी। सूरज चमक रहा है लेकिन बादलों की वजह से हम उसे देख नहीं सकते। बादल हट जायेंगे तो सूरज दिखाई देने लगेगा।

हमारा असली रूप क्या है ? हम आत्मा हैं, हम ईश्वर हैं। हमारे असली रूप पर मन और माया के परदे पड़ गए हैं जिनसे वह छिप गया है। अभ्यास यह है कि इन परदों को thin (झीना) करते चलो। बादल जितने गहरे होंगे, सूरज का प्रकाश उतना ही दबा हुआ होगा। यदि वे झीने होते जायेंगे तो सूरज का प्रकाश उतना ही साफ़ नज़र आयेगा। इन्द्रियों का दमन करो, मन की ख्वाहिशात (इच्छाओं, Desires) को इतना झीना करो जिसके बिना काम न चले, तब देखोगे कि प्रकाश है।

आप स्वयं ही देख लीजिये कि अगर इच्छाओं को कम करते जायेंगे तो ख़ुशी हासिल होती जायेगी। क्योंकि ? आत्मा के परदे हटते जाते हैं, उनका reflection (प्रतिविम्ब) आनन्द आपको महसूस होता जायेगा। अभ्यास से संस्कार ख़त्म नहीं होते, वे तो भोगने ही पड़ेंगे क्योंकि यह माँ का विधान है। लेकिन अभ्यास से अपनी तक़लीफ़ों को कम महसूस (अनुभव) करोगे। अभ्यास से अपने miserable life (दुःखी जीवन) को blissful (आनन्दमय) बना लोगे।

(५)

यम-नियम का पालन आवश्यक है ।

रुड़की

दिनके ३१--३--६६, प्रातः ६-३० बजे

हमारे यहाँ अभ्यासी जब तक यम नियम का पालन नहीं करता तब तक आगे नहीं बढ़ सकता । जो यह चाहते हैं कि हमें नाम (दीक्षा) दिया जाय और सिलसिले (हमारे सतसंग) में शामिल कर लिया जाय तो उनके लिये यह जुरूरी है कि पहले अपनी रहनी सहनी ठीक करें। पाँच यम हैं, पाँच नियम हैं :--

यम- (१) अहिंसा, (२) सत्य, (३) आस्तेय, (४) ब्रह्मचर्य, (५) अपरिग्रह ।

नियम-- (१) शौच, (२) सन्तोष, (३) तप, (४) स्वाध्याय, (५) ईश्वर प्रणिधान ।

इन यम नियमों का पालन करते हुए बुरी बातों को छोड़ना है और अच्छाई को ग्रहण करना है। यह जुरूरी है कि परमात्मार्थ में शामिल होने के लिये दुनिया से कुछ न कुछ वैराग हो । जो अब तक दुनिया को चाह हैं वें तरक़्क़ी नहीं कर सकते । जो कर्म कर चुके हो वे तो तकदीर में लिखे जा चुके हैं वे तो भोगने ही पड़ेंगे। जो कुछ तक़दीर में लिखा जा चुका है वह तो होकर ही रहेगा । कोई बेटा चाहता है, कोई अपने रोज़गार और नौकरी में तरक्की चाहता है, कोई अपने किरायेदार से परेशान है तो वह यह चाहता है कि किरायेदार मकान खाली कर जाय, किसी की अर्जी कहीं अटकी पड़ी है तो वह चाहता है कि मेरी अर्जी वहां से निकल जाय, इत्यादि । क्या यह परमार्थ है ? परमार्थ को एक खेल समझ रखा है । यह ठीक है कि अगर किसी का कोई काम ऐसा अटक गया है जिसकी वजह से उसके परमार्थ में तरक्की करे । लेकिन सिर्फ़ दुनिया के लिये ही यह सतसंग नहीं है। ज़िन्दगी का यही Aim (लक्ष्य) नहीं है । दुनिया में भी रुकावट पैदा हो गई है तो उसको सहुलियत हो जाय, इसलिये हम सबके लिये दुआ कर देते हैं और चाहते हैं कि वो परमार्थ में तरक्क़ी के लिये

कोशिश करे मगर ईश्वर का सहारा लेकर । अगर कामयाबी (सफलता) नहीं होती है तो निराश नहीं होना चाहिये, और यह सोच लेना चाहिये कि ईश्वर ने हमारी इसी में भलाई सोची है ।

सन्तमत उसके लिये है जो दुनिया से मुक्त होना चाहता है, और जो यम नियम का पालन करता है। अपने आपको इस लायक़ बनाओ तो इस सिलसिले में दाखिल होने के अधिकारी बनोगे । अब हमारी वृद्धावस्था है और हम में अरब इतना पौरुष नहीं रहा कि हम नये सतसंगियों को तालीम दे सकें, इसलिये हमने जगह जगह पर तालीम के लिये centre (केन्द्र) बना दिये हैं। जो लोग नाम लेना चाहते हैं वे पहले अपने नज़दीक के centre (केन्द्र) पर जायें और अभ्यास सीखें । यम नियम का सख्ती से पालन करें । जब उस centre (केन्द्र) से नाम देने के लिये सिफारिश की जायगी तब हम नाम देंगे ।

हमारे पास बहुत से ख़त आते हैं जिनमें प्रेमी जन हमारी बीमारी का हाल पूछते हैं और अपनी हालत वगैरा लिखते हैं । हमारे पास कोई लिखने वाला नहीं है और हमारा दाहिनता हाथ बीमारी की वजह से इस क़ाबिल नहीं है कि हम स्वयँ जवाब भेजें, लेकिन फिर भी हम कोशिश करते हैं कि जो जवाबी कार्ड आये हों उनका जवाब दे दें, बाकी खत पड़े रह जाते हैं उनका जवाब नहीं पहुंच पाता । हमने पहले भी लिखा है और रामसंदेश में भी छप चुका है कि हमारी बीमारी के बारे में सरदार करतार सिंह, डा० हरीकृष्ण और महेश बाबू से मालूम करना चाहिये। ये लोग मेरे हर वक्त Touch (सम्पर्क) में रहते हैं । अभ्यास के बारे में जो कुछ पुछना हो वह मुझसे पूछो । मुझसे सिर्फ़ उतना काम लो जितना निहायत (अत्यन्त) जरूरी हो ।

दो तरह के आदमी होते हैं । एक जिज्ञासू दूसरा सत्संगी । जिज्ञासू वो है जो देख रहा है कि कौन सा रास्ता अपनाऊँ । सत्संगी वह है जिसने रास्ता अपना लिया है । यह बाज़ार नहीं है कि एक दुकान देखी, फिर दूसरी देखी और सब जगह का मज़ा चखते रहे । सत्संग में शामिल हो जाने

के वाद ऐसा करना गलत है। लड़की की शादी हो जाने पर जब बहु बनकर ससुराल जाती है तब सास कुछ दिनों उसके पास रहतो है और जब बहू बाल बच्चों वाली हो जाती है और सयानी हो जाती है तब सास उनके पास नहीं रहती । वह अपने घर में स्वतंत्र है । हमारे सिलसिले का भी यही हाल है । गुरु और शिष्य का सम्बन्ध ऐसा ही है जैसा पति और पतिब्रता पत्नी का। सिलसिले में शामिल होने से पहले आपको पूरी आज़ादी है कि खब घूमिये और जहाँ चाहें वहाँ के सत्संग और उसके अधिष्ठाताओं की जाँच कीजिये । लेकिन जब एक बार इस सिलसिले में शामिल हो जायें तब दूसरी जगह नहीं जाना चाहिये वरना नुकसान हो जायगा ।

हमें एक वाका (घटना) याद आ गया । एक मुसलमान सज्जन मेरे Class-fellow (सहपाठी) थे जो मौलवी अब्दुलगनी साहव के शिष्य थे। उनका अभ्यास बहुत ऊंचा था | कई घंटे अभ्यास किया करते थे। बाबू जगमोहन लाल (महात्मा रामचन्द्र जी के सुपुत्र) व दूसरे सज्जनों को महात्मा जी ने तालीम के जरिये उन मुसलमान सज्जन के सुपुर्दे किया था लेकिन उनमें एक लत (आदत) थी कि हर दुकान पर से ज़ायक़ा (स्वाद) लेते थे यानी हर फकीर की सौहबत उठाना चाहते थे । उनका ख्याल था कि एक फकीर हर चींज में Specialist (विशेषज्ञ) नहीं हो सकता। अपने इस खयाल को उन्होंने हम पर भी जाहिर (व्यक्त) किया लेकिन हम पर कोई असर नहीं हुश्रा । वे जगह जगह फकीरों में घूमने लगे । उन्होंने मौलवी साहब को खत लिखा कि मुझे यह बतलाइये कि मैं कौन से मुकाम (चक्र) से गुजर रहा हूँ ! हमारे यहाँ का तरीका कश्फ़ यानी खेच का है। शिष्य की आत्मा को गुरु अपनी शक्ति से ऊपर को खैंच लेता है। जैसे किसी को दिल्ली की सैर करानी हो और उसे मोटर में बैठाकर साठ मील की रफ्तार से दिल्ली पहुंचा दिया जाय तो उसे रास्ते को चीज़ों का खास पता नहीं लगेगा सिर्फ एक झाई सी दिखाई देगी । इसी तरह जब गुरू

अपनी शक्ति से शिष्य की आत्मा को ऊपर चढ़ाता है तो शिष्य को बीच के स्थानों का खुल कर ज्ञान नहीं होता । बाद में जहाँ से चला था वहीं लाकर छोड़ देते हैं। इस कशफ़ (खेंच) के कारण

शिष्य को ऊपर के स्थान का आनन्द प्राप्त हो जाता हैं और कुछ न कुछ अनुभव हो जाता है। बाद में शिष्य अपने अभ्यास द्वारा मन को शुद्ध करके एक एक चक्र को पार करके ऊपर चढ़ता जाता है और उसको रास्ते की हरेक चीज Detailwise (ब्यौरेवार) मालूम होती जाती हैं । इस तरीके में पहले character formation (इखलाक की दुरुस्ती, चरित्र निर्माण) बहुत ज़रूरी है और गुरू से प्रेम होना चाहिये । अभ्यास बाद में होता है। कशफ़ (खैंच) के तरीके में शिष्य को Detail (ब्यौरा) का पता नहीं लगता और यह भी मालूम नहीं होता कि हम कौन से चक्र से गुजर रहें हैं । शब्द तक का पता नहीं चलता ।

मौलवी साहब ने उनके पत्र कां उत्तर बड़ प्रेम भरे शब्दों में दिया और समझाया कि अजीज, (तात) यह बात मत पूछो । लेकिन उनको तसलली नहीं हुई और मौलवी साहब को दुबारा पत्र लिखा । मौलवी साहब कृपा करके फिर भी उसे टाल गये। लेकिन उन सज्जन ने तीसरी बार फिर पत्र लिखा और यह भी लिख दिया कि अगर आप इजाजत (आज्ञा) दें तो मैं किसी दूसरी जगह से हासिल कर लूँ । इस पर मौलवी साहब नाराज़ हो गये और । लिख दिया कि जहाँ से तुम्हारी खुशी हो, हासिल कर लो । लाला जी साहब (मेरे गुरुदेव) को जब इस बात का पता चला तो बहुत दुःखी हुये और उन मुसलमान सज्जन से बोले कि तुमने बहुत बुरा किया जो एक फकीर को नाराज़ कर दिया, अब जाकर माफी माँग लो । उन सज्जन की अकेले जाने की हिम्मत न हुई आर लाला जी साहब को साथ लेकर मौलवी साहब की सेवा में गये । मौलवी साहब लाला जी साहब को बहुत प्रेम करते थे और उनकी हर बात मान लेते थे । वे कहा करते थे कि भाई साहब ने (परमसन्त मौलाना फज्ल अहमद खाँ साहब जो कि मौलवी साहब के गुरुभाई थे) इनमें (लाला जी साहब में) न मालूम

क्या भर दिया है कि जिसकी थाह नहीं मिलती। लाला जी साहब को देखकर बोले -"मुन्शी जी आप ! फरमाइये कया बात है ? " लाला जी साहब ने नम्रतापूर्वक निवेदन किया कि इस अजीज (उन मुसलमान सज्जन) से बड़ी गलती हो गई, इसको माफ़ कर दिया जाय । मौलवी साहब ने कहा कि मैं आपकी और सब बात मान लूँगा लेकिन इस बीच में आप मत पड़िये, मैं इसे माफ नहीं कर सकता क्योंकि इसमें मेरे सिलसिले (वंश) की बेइज्ज़ती होती है । लाला जी साहब ने कई बार प्रार्थना की लेकिन उन्होंने नहीं माना । अब तक उन मुसलमान सज्जन को कहीं किनारा नहीं मिला और वे भटकते फिरते हैं। न दीन के रहे न दुनिया के । फकीर को कभी नाराज़ नहीं करना चाहिये। वह तो तुम्हारा भला चाहता है । हमारे यहाँ का तरीका जज़बुल सलूक (भक्ति -ज्ञानी अर्थात पहले भक्ति फिर ज्ञान) का है। गुरु प्रेम के वशीभूत होकर अपनी शक्ति से शिष्य की सुरत को ऊपर खैंच देता है, आत्मा साथ जाती है और ऊँचे स्थान का आनन्द लेती है । मगर जब तक मन शुद्ध नहीं हो जाता तब तक आत्मा वहाँ ठहर नहीं पाती। शिष्य उस आनन्द को नीचे गिरने पर भी भूलता नहीं है और उसी की खिंचावट में वह आगे तरक्की करता जाता है। पहली शर्त यह है कि गुरु और शिष्य में परस्पर प्रेम हो, मन की दुई मिटकर एक हो जाय, दोनों का सतोगुणी मन मिल जाय, दोनों का तम और रज खत्म हो जाय, तब फायदा होगा वरना (अन्यथा) गुरु कितनी भी कोशिश करे, आत्मा का अनुभव नहीं करा सकता।

उस वक्त तक हर जगह नहीं जाना चाहिये जब तक पुख्तगी (परिपक्वता) न हो जाय । फिर तो सन्त खुद इजाजत (अनुमति) दे देते हैं। इसमें Narrow mindedness (ओछापन) नहीं है बल्कि इसमें आपको बचाया जा सकता है। फ़कीरो में आजकल दुकानदारी चल रही है । इसको लोगों ने एक (व्यवसाय) बना लिया है। कोई बात ऐसी कह देते हैं जिससे अपने गुरु की तरफ से बदएतकादी (अविश्वास) पैदा करके नास मार देते हैं ।

गुरु की तलाश में एक जन्म भी लग जाय तो कोई हर्ज नहीं । जब गुरु धारण कर लो तो दरवाजा छोड़कर मत जाओ । तुम किसके शिष्य बनते हो ? क्या आदमी के ? नहीं, आप तो ईश्वर को गुरु धारण करते हैं। जिस शरीर में ईश्वर बसता है वह तो मिट्टी का बना हुआ है। वह तो मंदिर है। मंदिर की पूजा तो नहीं करते, उसके भीतर जो मूर्ति होती है, पूजा उसकी की जाती है।

गुरुदेव सबका कल्याण करें !

(६)

चाह और दीनता

(लिखित प्रवचन)

मनुष्य यह नहीं जानता कि वास्तव में वह चाहता क्या है और प्रभु से माँगता क्या है ? उसके अन्तर में अनेक प्रकार की चाहें उठतीं रहती हैं और वह उन्हीं के अनुसार व्यवहार करता है। किसी वस्तु या स्थान के विषय में कुछ सुना तो उसे प्राप्त करने की या देखने की इच्छा प्रबल हो उठती है। कहीं यह सुन लिया कि मालिक दर्शन करने योग्य हैं, उनके दर्शन अवश्य करने चाहिये,तो वैसी चाह उठने लगी। यदि यह चाह प्रबल हुई तो ऐसा प्रतीत होता है कि वह अब और वस्तु नहीं चाहता, केवल मालिक के दर्शन करने है। किन्तु यह चाह क्षणिक होती है। उसे यह मालुम नहीं कि उसके अन्दर अनगिनत दूसरी चाहों के अम्बार लगे हुए हैं और जिस समय उन चाहों में से किसी एक या एक से अधिक ने उग्र रूप धारण किया और सँसार के भोग रसों का झोंका आया तो मालिक के दर्शनों की चाह का पता भी न रहेगा कि किधर विलीन हो गई। हमारा अंतःकरण मलीन है। पर्दे पर पर्दे पड़े है। हर पर्दे से चाहें उठती हैं और जितनी नीचे से चाह उठेगी, ऊपर वाली चाह को दबा लेगी। यदि मालिक से मिलने की चाह अंतःकरण (ब्रह्माण्डी मन या सतोगुणी मन) के भीतरी पर्दे से होती तो वह अन्य चाहों के उठने पर इस तरह विलीन नही हो जाती। वह चाह तो अंतःकरण के बाहरी पर्दे (पिंडी मन या रजोगुणी मन) से उठी थी, इसलिए जल्दी विलीन हो गई।

सत्संगियों की भी न्यूनाधिक यही दशा होती है। जिस समय जो चाह जागृत होकर उभार लेती है उस समय उसी का वेग रहता है और उसी के अनुसार कर्म होने लगते है। जब तक कोई चाह प्रबलता से नहीं उभरती तब तक वह यह समझता है कि अब कोई संशय शेष नहीं रहा, सब बातें अच्छी तरह समझ लीं , अब तो केवल एक ही चाह शेष है कि मालिक के दर्शन हो जाये किन्तु

यह सोच -विचार बिलकुल ग़लत हैं क्योंकि जो चाहें मन में अभी गुप्त रूप से जमा हैं उनकी उसे अभी सुध भी नहीं है। जब मनुष्य शौच स्नान आदि नित्य कर्मो से निबट कर बैठता है तो उस समय उसकी तबियत कुछ कुछ हल्की और ताजा हो जाती है कोई काम और दुनियां को चिंता विशेष रूप से नहीं रहते एक प्रकार से शांति सी प्रतीत होने लगती है, तब यह समझने लगता है कि अब मालिक से मिलने की कार्यवाही बहुत अच्छी तरह से कर सकता है। परन्तु जब भजन, ध्यान और ईश्वर का स्मरण करने बैठता है तो चाहों के हिजूम सामने आने लगते हैं। संसार की चिंता सुख दुःख हानि लाभ किसी वस्तु का प्रबंध करना अदि के विचार सामने आ जाते हैं। एक सड़ी सी बात लेकर ही मन कभी कभी घंटो सोचा करता है और स्मरण, ध्यान व भजन जिसके लिए वह बैठा था, सब ग़ायब हो जाते हैं। यदि मालिक से मिलने और उसके दर्शन करने की चाह के सिवाय और कोई चाह अन्तर में मौजूद नहीं थी तो यह सब चाहें कहाँ से आ गईं ? बात वास्तव में यह है कि ये सब चाहें मन में पहले से ही जमा थीं और जमा हैं। अन्तर केवल इतना है कि जो मनुष्य संत सदगुरु की शरण में आए हैं और जिनको उन्होंने उपदेश दे दिया है उनके अंतःकरण में मालिक से मिलने और उसके दर्शनों की चाह के बसने की जड़ जम गई है। उनके अन्तर में वह चाह नीचे के पर्दों तक प्रवेश करती जाती है और सदा मौजूद रहती है चाहे देखने में उनका व्यवहार निपट संसारियों का सा क्यों न हो। चाहें जितने भी झकोले दुनियाँ के झंझटों के आवे वह चाह नष्ट नहीं होंगी, बीज रूप में बनी अवश्य रहेगी। बहुत समय तक गुरु के सत्संग में रहने से जब वह चाह निज मन और सुरत में बस जावेगी तब कोई डर नहीं रहेगा, यह निश्चय हो जाएगा कि कभी वह चाह प्रबल रूप धारण करेगी और एक न एक दिन उसके प्रभाव से मालिक से मिलना हो सकेगा। किन्तु यह कदापि नहीं भूलना चाहिए कि मालिक से मिलना या उनके दर्शन प्राप्त करना कोई दाल -भात नहीं है जो आसानी से खा लिया जाए। जब दुनियाँ और दीन की सब चाहों में आग लगा दी जायेगी , केवल एक चाह मालिक से मिलने की ही शेष रहेगी, और मनुष्य के सब व्यबहार,

आन्तरिक और बाहरी, उसी के अन्तर्गत होंगे, सब पाप का नाश हो जायेगा, तब मालिक के दर्शन होंगे।

यह सोचना कि घर-बार छोड़ देने से सब चाहों का नाश हो जायगा और परमार्थ की कमाई सुगमता से हो सकेगी, नितान्त भ्रम है। जो ऐसा करते हैं, अपने आपको विरक्त समझ कर घर से निकल जाते हैं, वे यह नहीं जानते कि वास्तव में उन्होंने कुछ नहीं छोड़ा गृहस्थ जीवन व्यतीत करने से मन के ऊपर जो अंकुश रहता, उससे भी अपने आपको हटाकर निडर बना लिया । जो चाहें मन में भरी हुई थीं उन्हें बेलगाम बतने लगे । घर पर चाहे सूखी रोटी भी खाने को न मिलती हो, अब पाखण्ड करके नाना प्रकार के भोजन मिलने लगे। गेरुए कपड़े पहन कर पुजने लगे । अब किसका डर ? जो जी में आता है करते हैं । यदि धन की आवश्यकता हो और न मिले तो दूसरे की गर्दन काटने में भी संकोच नहीं करते । जो वन्धन पहले गृहस्थ जीवन में थे अब उनसे अधिक हैं, केवल उनका रूप वदल गया है और अपनी इच्छाओं के बुरी तरह गुलाम बन गये हैं। धन-सम्पत्ति, मान-बड़ाई आदि संसार की सब चाहें ज्यों की त्यों मौजूद हैं । उन्होंने त्याग क्या किया, अपने लिये अधोगति में जाने का सामान तैयार कर लिया। यदि घर-वार छोड़ने और संसार त्याग देने से ही मुक्ति मिल जाती तो मरते समय तो यह सब अपते त्राप ही छूट जाता है, क्यों मुक्ति नहीं मिलती ? यदि इसी विधि से मुक्ति हो सकती तो बहुतेरे लोग खुशी से मौत का आवाहन करते । मगर मरने से मुक्ति नहीं मिलती । विरक्त हो जाने और भेष धारण कर लेने से परमार्थ हीं बनता । इसका आशय यह भी नहीं है कि विरक्त से सच्चे परमार्थ की कार्यवाही बन ही नहीं सकती । विरक्त अवस्था में रह कर परमार्थ लाभ कर सकने वालों की संख्या बहुत कम है । इसके विपरीत गृहस्थ में रहकर परमार्थ की कार्यवाही वर्तमान युग में अधिक सुगमता से की जा सकती है। गृहस्थ जीवन में तो किसी सीमा तक बहुत सी चाहें न्यायोचित ढंग से पूरी होकर उनसे निवृत्ति हो सकती है, किन्तु

विरक्त अवस्था में देखने में तो ऐसा प्रतीत होता है कि चाहों पर रोक लगा दी गई हैं, परन्त अन्तर में वर्तमान और बलवती होती जाती हैं और किसी न किसी समय प्रबल वेग से उग्र रूप घारण कर लेती हैं।

प्राचीन काल में जो योगा अभ्यास आदि किये जाते थे उनके लिये घर द्वार छोड़ना और संसार का त्याग करना उचित और आवश्यक था । विरक्त होकर ही वे साधन सुगमता से पालन किये जा सकते थे। किन्तु इस जमाने में उन साधनों का समय नहीं हैं । यदि कोई हंठ करके घर-बार छोड़कर विरक्त वन जाय और उन योग की विधियों तथा अभ्यासों को करना चाहे तो अधिक से अधिक उनके प्रारम्भिक अंगों की साधना कर सकता हैं । सम्भव हैं कि नीचे के घाट की कुछ सिद्धियाँ तथा शक्तियाँ भी प्राप्त कर ले। इससे अधिक और कुछ प्राप्त नहीं होगा । योगी और योगेश्वर ज्ञानी की गति को प्राप्त नहीं हो सकता । सन्तों में जिस आन्तरिक स्थान को दशम द्वार या सुन्न पद कहते हैं वह बहुत दूर और बहुत ऊँचा हैं। यौगिक विधियों से तो उसके खुलने का प्रश्न ही नहीं उठता । योगियों का दक्षम द्वार जो सन्तों का तीसरा तिल कहलाता हैं, वह भी अब योग विधि से नहीं खुल सकता क्योंकि वें वास्तविक विधियाँ अब कोई नहीं जानता। सन्त मत की रीतियों और विधियों के सिवाय और किसी विधि से योगियों का दशम द्वार नहीं खुल सकता । इस युग में प्राचीन युग की कोई बात न तो बन सकती हैं और न प्राप्त हों सकती हैं। केवल उनका ऊपरी अंग बन सकता हैं या निचले घाट की कुछ शक्तियाँ जागृत की जाती हैं, जिनसे सिवाय अहंकार बढ़ने के और कुछ तत्व नहीं निकलता । अहंकार सब पापों का मूल हैं और मनुष्य को अधोगति में ले जाता हैं। प्राचीन काल में मनुष्य अधिक बलवान, पराक्रमी और पुरुषार्थी थे, योग विधियाँ और यौगिक्र अभ्यास उनसे भली माँति बन सकते थे । इस युग के मनुष्यों में वह बल, पराक्रम और पुरुषार्थ नहीं हैं और न अब वे सिखाने वाले रहे । अतः वे यौगिक अभ्यास नहीं बन

सकते और इसलिये घर-बार छोड़ कर विरक्त होने की आवश्यकता नहीं है। यह समय की बात है। समय के प्रभाव से सब बातें बदल जाती हैं ।

यह युग प्रेम और भक्ति का है जो बिना दीन बने नहीं आ सकती । यदि सच्ची चाह मालिक से मिलने की और उनके दर्शन प्राप्त करने की होगी तो सच्ची दीनता भी आवेगी और उससे परमार्थ की कार्यवाही सुगमता से बन पड़ेगी । यदि सच्चे गुरु की शरण प्राप्त कर ली है और उनके उपदेश का पालन करता है तो चाहे वह कहीं भी रहे उसका परमार्थ बनना शुरु हो गया है । जो बीज सतगुरु ने उसमें डाल दिया है वह नष्ट नहीं होगा। जब भी उससे सच्चे परमार्थ की कार्यवाही बनेगी वह बीज अँकुर बन कर फूटेगा और फूलेगा- फलेगा । उसकी एक न एक दिन सब चाहें नाश हो जायेंगी। केवल एक ही प्रबल चाह रह जाएगी कि कब मालिक के दर्शन प्राप्त हों । सतगुरु के चरणों में प्रीति आना बड़े सौभाग्य की बात हैं। इसी के द्वारा सब मार्ग सुगम हो जाता है।

दीनता के विभिन्न रूप होते हैं । मनुष्य की जिस समय जैसी स्थिति होती है वैसा ही उसका दीनता का रूप होता है ! उदाहरण के तौर पर कुत्ता भी अपने स्वामी के साथ दीनता करता है और उसके लिये जान तक दे देता है। यह तन के घाट की दीनता है शरीर का त्याग स्वामी के शरीर की रक्षा के लिये। तन के घाट का बल माया का बल है। यदि किसी के पास धन नहीं है तो वह दुःखी भर दीन है परन्तु उसे चाह इस बात की है कि धन मिले। धन मिल जाने पर दीनता जाती रहती है क्योंकि जिस वस्तु की चाह थी वह पूरी हो गई । हाँ, धन का कुछ सदुपयोग कोई धार्मिक कार्य करने से हो सकता है जैसे दान करना, धर्मशाला, कुएँ मन्दिर, स्कूल, अस्पताल आदि बनबाना। इसका फल इसी लोक तक मिलेगा कि थोड़ा बहुत सांसारिक सुख प्राप्त हो जाय । यदि किसी ने दीन होकर देवी देवता का इष्ट धारण किया तो उससे सच्चा मालिक नहीं मिल सकता । इस प्रकार के दृष्ट से साँसारिक स्वार्थ भले ही पूरे हो जायें, कोई सिद्धि या कला आ जाय, धन सम्पत्ति मान-

बड़ाई मिल जाय और जब यह वस्तुये प्राप्त हो जायें तो उस देवी या देबता का इष्ट छोड़ दें। ये तीन उदाहरण इस बात का प्रमाण देते हैं कि संसार के दुःखों से दुःखी होकर दीनता पैदा तो हुई किन्तु चाह यही रही कि जिन वस्तुओं के अभाव से यह दीनता पैदा हुई वे प्राप्त हो जावें। यह चाह नहीं थी। कि संसार को छोड़ दिया जाए और सच्चे मालिक की प्राप्ति हो। सच्चे मालिक की प्राप्ति कि चाह या ऐसी चाहें जो उसके प्राप्त होने में सहायक हों , उनको छोड़ कर शेष सब चाहे निकृष्ट हैं और दुनियां में फंसाने वाली हैं। संसारी चाहों के पूरा होने से परमार्थ की कार्यवाही नहीं बन सकती। यह भले ही हो जाए कि हर मृत्यू से कुछ कर्म कट जाएँ, कुछ कर्म बोझ हल्का हो जाए और आगे चल कर जब इन सब से ऊब जाये तब मालिक से मिलने की सच्ची दीनता पैदा हो तथा सच्चे परमार्थ की करनी बने।

उत्तम दीनता यह है कि सँसार से दुःखी होकर सँसार को छोडना चाहे। जो इस सँसार से दुःखी है उसे यहाँ की कोई वस्तु नहीं सुहाती, किसी वस्तु में आवश्यकता से अधिक उसका ध्यान नहीं जाता। वह यहाँ इस तरह रहता है जैसे कोई परदेसी हो जो दूसरी जगह जाकर बेबस और लाचार हो जाता है और यही समझता है कि यह देश मेरा नहीं है। वास्तव में वह बादशाह का बेटा है जिसके घर में राजमुकुट और राजसिंहासन सब कुछ मौजूद है। इस देश में जहाँ मन और माया कि हुकुमत है, आन फंसा है, जो इसके लिए परदेस है और जहाँ इसका कोई वश नहीं चलता, कोई हाल पूछने वाला नहीं है। जिसका कोई हाल पूछने वाला नहीं और जिसे सँसार के तथा उसके पदार्थों से कोई लगाव नहीं है और उसका पूछने वाला परमपिता परमेश्वर है। ऐसा मनुष्य सच्चा दीन और ग़रीब है। ग़रीब से तात्पर्य यह है कि उसके पास किसी और का बल नहीं है। न तो वह सँसार के ही किसी योग्य है और न

ही वह परमार्थ की करनी ही भली प्रकार कर सकता है। ऐसे दीन पर मालिक ख़ूब दया करता है और उसके सब काम भली प्रकार बनते चलते हैं। उसको सिवाय मालिक के किसी दूसरे का बल और सहारा नहीं है। जो मनुष्य ऐसा दीन होगा वह सतगुरु के वचन हितचित से सुनेगा और उन पर अमल करेगा। यह हुई उत्तम दीनता। इससे भी उत्तम अर्थात सर्वोत्तम दीनता होती है - वह है प्रेम रूप दीनता। प्रेम में वह आकर्षण होता है कि सुरत स्वयँ मालिक की ओर को खिचती है क्योंकि वह उसका अंश है। जब मनुष्य के सब आपे दूर हों, सिवाय परमात्मा के और किसी का भरोसा न हो तब प्रेम की वह अवस्था प्राप्त होतीं है और वही पूर्ण दीनता की अवस्था है।

भगवान को दीनबन्धु, दीनदयालु, दीनानाथ, दीनन दुःख हरन नाथ आदिनामों से पुकारा जाता है। जब सच्चा और पूर्ण दीन बने तो दीनबन्धु और दीनानाथ का पात्र बने। अतः दीनता को अपनाना चाहिए। पहली चाहें वह निकृष्ट श्रेणी की ही क्यों न हो, धीरे -धीरे वह उत्तम और अति उत्तम श्रेणी की भी हो जायेगी। इस काम में सतगुरु का सत्संग बहुत लाभदायक है। जब जब सतगुरु का संग मिले उसका लाभ उठाना चाहिए।

असली सत्संग यह है कि सतगुरु की वाणी को याद रखे और उनके आदेशों पर चलने का प्रयत्न करे। संत लोग ज़ाहिरदारी उपदेश बहुत कम करते हैं क्योंकि अभ्यासी इस कान सुनते हैं और उस कान निकाल देते हैं। वे उपदेश उसी को करते हैं जो उसका पालन करने की कोशिश करते हैं अन्यथा वह मौन धारण कर लेते हैं। क्योंकि बात यदि स्पष्ट कही जाए तो जो व्यक्ति मनमत है और अपने मन के कहने पर चलता है वह उनके वचन सुनकर बिलकुल ही अलग हो जाएगा। जब तक वह अपने मन के मुताबिक़ व्यवहार कर रहा है तो मन की ओट में कुछ भक्ति भी

कर रहा है। सम्भव है आगे चल कर सीधे रास्ते पर आ जाए। और यदि उसको कोई बात साफ - साफ कही जायेगी, तो जो वह कर रहा था उसको भी छोड़ देगा और जो कुछ लाभ हो रहा था उससे भी वंचित हो जाएगा। इसलिए संत लोग ऐसे अभ्यासियों के साथ ख़ामोशी इख्तियार कर लेते हैं और इसी में उनकी भलाई है।

(७)

असली विद्या

(लिखित प्रवचन)

जब हम पाठशाला में पढ़ते ये तब पहले हमें अक्षर-ज्ञान कराया गया। अ, आ, इ, ई, आदि अक्षर पढ़ाये गये । जब अक्षर- ज्ञान हो गया तब मात्राएं सिखाई गई और जब मात्राओं की समझ आ गई तब अक्षरों का मिलाना सिखाया गया। जब हम यह भी सीख गये तब शब्दों और वाक्यों को पढ़ने लगे। इनके अभ्यास और शिक्षा के माध्यम से हम पुस्तकों के पृष्ठ के पृष्ठ पढ़ते रहे किन्तु इसके बाद भी हम विद्वान कहलाने योग्य नहीं हुये । इसका कारण यह था कि हमें शब्दों का अर्थ और भावार्थ ज्ञान नहीं था । धीरे धीरे हमें इसका भी ज्ञान होने लगा, आयु बढ़ती गई, बुद्धि विकसित होती गई और इस बात की समझ आने लगी कि विद्या क्या है और उसको पढ़ने का क्या लाभ है। यह समभ में आते ही हमने पुस्तकों का भ्रध्ययत करके अपना ज्ञान बढ़ाने का प्रयन्न किया तब हमें उनका कुछ ज्ञान हुआ तथा उनकी व्याख्या करने लगे । अ्रव दुनियाँ हमको विद्वान कहती है जो कुछ हम कहते हैं उसको आदर की दृष्टि से देखती है। यदि हमने विद्या की प्रारम्भिक कठिनाइयों का तिरिस्कार किया होता या अपने शिक्षकों के कहने को ऊल जलूल समझ कर बेपरवाही की होती तो आज हमको पढ़ने-लिखने और पुस्तकों के अध्ययन का लाभ न होता । प्रारम्भ के अक्षर विद्या नहीं थे किन्तु विद्या प्राप्ति के साधन थे। इसी प्रकार यह पुस्तक भी स्वयं विद्या नहीं हैं, साधन अवश्य हैं। सब लक्ष्य भी नहीं हैं । लक्ष्य और साधन में अन्तर होता है। वे एक से नहीं होते । जो लोग उसकी समझ नही रखते वे सच्चे विद्वान भी नहीं होते । विद्या कोई और वस्तु है और साधन तथा ज्ञान कुछ और । जिस प्रकार बढ़ई हाथ में बसूला लेकर लकड़ी को

काटता है उससे सुंदर मूर्ति गढ़ कर निकालता है वैसे ही इन साधनों से विद्या प्राप्ति में सुविधा रहती है।

असली विद्या कहाँ है ? वह कहीं और नहीं है, हमारे हृदय में है। हमारा हृदय ही विद्या, ज्ञान तथा गुणों का भण्डार है। विद्या कहीं और से नहीं आता बल्कि वह हममें मौजूद है। बाहरी सामान केवल उसके प्रसार के साधन हैं। जिस प्रकार किसी शिल्पी का हथोड़ा चोट मार कर पत्थर में से मूर्ति निकालता है उसी प्रकार अध्ययन, पाठन, अभ्यास और स्वाध्याय से विद्या हमारे भीतर से निकलती है। किसी विद्यार्थी को कोई पढ़ायेगा क्या ? केवल उसकी आन्तरिक शक्ति को जागृत करके उसको क्रमबद्ध करने का अभ्यास किया जाता है। इस काम के लिये साधन जुटाये जाते हैं, शिक्षा दी जाती है जिससे वह अपने हृदय के भीतर से विद्या के छिपे हुये भंडार को बाहर निकाले। यदि उसको अपने हृदय के भीतर घुसने का भेद मालूम हो गया तो वह विद्वान बन जायेगा। यदि इस भेद से वंचित रह गया तो विद्वान की बजाय नकंलची और भांड कहलायेगा। श्राजकल हम में से इस प्रकार के पढ़े-लिखे भांड बहुत हैं जिनको विद्या तो श्राती नहीं परन्तु सुनी सुनाई और पढ़ी पढ़ाई बातों को दोहराते रहते हैं। ऊंचे ऊंचे मंचों पर उनके व्याख्यान सुन लो। हर्बट स्पेन्सर, थेकले और महान विद्वानों के नाम उनके व्याख्यानों में सुनने को मिलेंगे। किन्तु यह न होगा कि वे अपनी भी कुछ कहें। यह माना कि अमुक बिद्वानों की अमुक राय है किन्तु तुमने अपनी ओर से क्या सोचा है। किस निष्कर्ष पर पहुँचे हो ? इसका उत्तर वे कुछ नहीं देंगे। यह लोग सदा दूसरों की उगलन अपने मुंह में लेकर चबाते रहते हैं। इसके अतिरिक्त इन्हें श्रौर कुछ नहीं आता। यही कारण है। यही कारण है कि इनको संसार में शान्ति नहीं मिलती। इन्होंने न तो शान्ति का सिद्धान्त अपनाया है और न परमात्मा की इच्छा के अनुकूल रहने का और न इनको उस सिद्धान्त का पता है।

संसार के लोग चाहे मान लें किन्तु बुद्धिमान मनुष्य इस बात को नहीं मानेंगे । असली विद्या वह है जो मनुष्य का मूल तत्व ग्थवा यथार्थ हो श्रोर उसके श्रन्तर के श्रन्तर से स्रोत की तरह उसी प्रकार निकलती हो जैसे गंगोत्री का जल निरन्तर प्रवाहित होता रहता है। पुस्तकें क्या कहती हैं, यह प्रइन नहीं है । पुस्तकें मनुष्य की बनाई हुई हैं और मनुष्य के विचारों तथा खोजों का चित्रण उनमें मिलता है । वास्तविकता नहीं है । मनुष्य की गढ़त पुस्तकों से नहीं होती किन्तु आजकल के पढ़े-लिखे लोग ऐसे बनना चाहते हैं जिनको मानों पुस्तकों ने गढ़ा हो । जो विद्या आत्मा की मुक्ति तथा आ्राजादी की ओर ले जाती है वही असली विद्या है । जो विद्या बन्धन में जकड़ती है श्लौर मनुष्य को दुनियाँ और दुनियां की चीज़ों का गूलाम बनाती है वह श्रसली विद्या नहीं है । वह कोई और वस्तु है । दुनियाँ में अशान्ति फैली हुई है, शान्ति का कहीं नाम नहीं, और इस पर भी यह गवे है कि विद्या और कला का डंका बज रहा है। हममें से कितने ऐसे मनुष्य हैं जो आनन्द का जीवन व्यतीत कर रहे हैं ? कितने मनुष्य ऐसे हैं जिनमें चैतन्य शक्ति के लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं ? कितने मनुष्य ऐसे हैं जो अपने ध्यक्तित्व का प्रभाव दूसरों में प्रवेश कर सकते हैं। हर जगह ऐसे व्यक्तियों का अभाव है और फिर भी यह दावा है कि हम विद्वान हैं ।

यदि हमसे पूछा जाय तो हम यह कहेंगे कि जो विद्या हमको धोबी के कुत्ते की तरह घर-घाट का नहीं रखती उसको ले जाकर समुद्र में डुबो दो । जो विद्या हमकों जूठन खाने वाला बनाती है उसका मिट जाना ही अच्छा है । जो विद्या हमको संसार में किसी और का मौहताज और आश्रित कर देती है उसको दियासलाई लगा कर जला दो क्योंकि जब वह नहीं रहेगी तो हमारी दुर्दशा नहीं होगी । विद्या के विषय में यह पहले ही कहा जा चुका है कि विद्या केवल वास्तविकता और यथार्थ का नाम है जिसे सूफ़ियों में जात कहते हैं। विद्या वह शक्ति हैं जिससे संसार की सारी शक्तियाँ प्रभावित होती हैं । विद्या वह ज्योति है जिसकी सहायता से माया के अन्धकारमय आवरण

स्वयं हट जाते हैं । विद्या साहस और शौर्य हैं जिसके सामने पहाड़ पानी बन कर बह जाता है। क्या आपको आजकल के विद्वानों में यह गुण मिलते हैं ? यदि नहीं तो जो कुछ पढ़ा लिखा जा रहा है वह विद्या नहीं अविद्या है ।

सारी विद्याओं , कलाओं , आदि का सिद्धान्त यह है कि मनुष्य के मस्तिष्क में यह बात बैठ जाय कि मैं क्या हूँ, मेरी असलियत क्या है, और मुझ में क्या गुण हैं ? लोग हर वस्तु की कदर और कीमत जानते हैं किन्तु अपनी हैसियत नहीं पहचानते । उनसे कहो कि तुम निपट अनाड़ी और परले सिरे के मूर्ख हो ।

जिसको अपनी मूल सत्ता का ज्ञान होता है वह सभ्यता के सर्वोच्च शिखर पर होता है। जिसको अपनी आत्मा का ज्ञान है प्रत्येक वस्तु पर अपना प्रभाव डालता है । किसी से द्वैत भाव नही रखता । राम को अपनी आत्मा का ज्ञान था । दुनियां की सबसे बड़ी ताकत (रावण), केवल बन्दरों और रीछों के द्वारा विजय कर लिया और दुनिया को दिखा दिया कि शक्तिशाली मनुष्य किस प्रकार छोटी से छोटी वस्तु को अपनी शक्ति देकर बडी से बडी शक्ति को नीचा दिखा सकते हैं । भागीरथ को अपने मूल तत्व का ज्ञान था । आकाश से गंगा को विवश किया कि भारतवर्ष के मदानों को जलमग्न कर दे । हिमालय पर्वत ने अपनी कन्दराओं में गंगा को छिपाने का भरसक प्रयत्न किया किन्तु आत्म-ज्ञानी भागीरथ ने हिमालय का हृदय फोड़ कर उल्टी बहने वाली गंगा को सीधा बहाया । आत्म-ज्ञानी ही सच्चा विद्वान, सच्चा पंडित और सच्चा-शक्तिशाली है जिसकी शक्ति के सामने संसार को आदरपुर्वक नतमस्तक होना पड़ता है । बुद्ध भगवान् क्या थे ? एक मामूली हैसियत के साधू लगते थे किन्तु संसार भर को अपने प्रभाव में ले लिया । शंकाराचार्य की क्या हैसियत थी ? देखने में एक दुरबल विद्यार्थी ये जिनके पास कोई सामान न था। देखते-देखते अपनी महानता का डंका बजा गये। यदि इतिहास को पढ़ो तो ज्ञान होगा कि इनका प्रभाव केवल भारतवर्ष तक ही

सीमित नहीं था। अन्य देशों और जातियों का साहित्य पढ़ने से ज्ञात होगा कि बुद्ध ने २५ वर्ष के प्रचार में समस्त एशिया को घेर लिया था। शंकर ने ३० वर्ष को आयु में फ़ारस इत्यादि की महान शक्तियों पर अपना प्रभाव जमा लिया था। यहाँ तक कि ज़रदश्तनवी को अपनी धार्मिक कृतियों में उनकी महानता स्वीकार करनी पड़ी है और वह अपनी पुस्तकों में उनको "चंकरखाचा' का नाम देता है जो शंकराचार्य का अपभ्रंश है। आइचर्य की बात है कि शंकर ने सात वर्ष की आयु में उपनिषदों की व्याख्या लिखी। जो कुछ करना था २०-२२ वर्ष की अवधि में कर लिया और अपने जीवन के मिशन को पूरा करके ३० वर्ष की आयु में संसार से विदा ली। क्या यह आश्चर्य की बांत नहीं है कि केवल कुछ ही वर्षों के अध्ययन में गौतम बुद्ध के विचार सारे संसार में फेल गये ? यह लोग वास्तव में मनुष्य थे, विद्वान थे और आत्मज्ञानी थे। यह अपनी आत्मा के बल को जानते थे। आप इनकी बिद्या को विद्या कह सकते हैं। अन्य लोगों की विद्या, विद्या नहीं है, अविद्या है जिसको सूफ़ी लोग 'जहल' कहते हैं। कोल्हू के बेल की तरह दिन भर चक्कर लगाते रहते हैं और अन्त में जहाँ थे वहीं पड़े रहते हैं। न इनके काम का किसी पर प्रभाव पड़ता है और न उनकी दीन और दुनियाँ में इज्जत होती है। अब यह प्रत्यक्ष है कि यह भूठे हैं जूठन खाने वाले और दूसरों का चबाया हुआ ग्रास चबाने वाले हैं। स्बयं दुःखी हैं और दूसरों को दुःखी करते हैं। स्वयं भज्ञानी हैं और दूसरों को भज्ञान के अंधेरे कुएँ में ढकेलते रहते हैं। इनको यह भी ज्ञात नहीं कि हमारे कर्मों का क्या फल होगा ? उन्हें अपने ऊपर भरोसा नहीं। अपने परों पर खड़ा होने की शक्ति नहीं। दूसरा उनको रोटी दे तो वे खायें। दूसरा उनको कपड़े पहिनायें तो वे कपड़े पहिनें। खूंठे से बंधे हुये पशु की भांति दूसरों के लाये हुए चारे को चबाते हैं और बार-बार उसी की जुगाली करते रहते हैं। यह लोग वेद के मंत्रों की डोंग मारते हुए फुटबाल की तरह ठोकर खाकर इधर से उधर लुढ़कते हैं। यह उपनिषदों का हवाला देते हुए थोड़ी-सी परीक्षा के समय ऐसे फिसल पड़ते हैं कि मूह के बल गिर जाते हैं और दुनियाँ उन पर हंसती है। यदि वेदों और उपनिषदों की शिक्षा का यह परिणाम है

तो उनको दूर से प्रणाम् करना चाहिये, किन्तु इनमें वेदों प्रौर उपनिषदों का दोष नहीं है । दोष लोगों की प्रोछी दृष्टि और त्रुटियों का है। जब तक वेदों की वाणी मनुष्य के जीवन में न उतर आये, वह वेद कब हैं ? जब तक उपनिषदों की तरह मनुष्य की रहनी-सहनी न बन जाये, उनके मन्त्र उसके हृदय मन्दिर में न गूंजे , वह उपनिषद कब है ?

साधारण विद्वानों का जो हाल यहाँ है वह आपने देख लिया । उनकी विद्या में जान और ताक़त नहीं है। उनका पग मृत्यु और शक्तिहीनता की ओर अग्रसर हो रहा है। क्या अब भी आपको ऐसी विद्या और ऐसे विद्वानों पर विश्वास करना चाहिये ? दूसरी ओर दृष्टि डालकर देखें तो जो ब्रह्मज्ञानी कहलाते हैं वे रोटियों को दर-दर मारे फिरते हैं। न उनकी कोई सुनता है और न उनमें शक्ति है कि वे अपने ब्रह्मज्ञान का प्रभाव दूसरों के हृदय पर डाल सके।

जो शिक्षा मनुष्य को परमात्मा तथा उसके मूल तत्व का ज्ञान कराने वाली थी वह आज इन वाचक ज्ञानियों के कारण बदनाम हो रही है। वास्तविक बात यह है कि वे लोग उसके तत्व और सार को नहीं समझते श्रौर न दूसरों को समक्ला सकते हैं। न यह अपने हृदय मन्दिर में घुस कर विद्या के श्रसली रूप को पहिचानने की योग्यता रखते हैं। उनमें प्रनुभव नहीं है। यह भवसागर की लहरों में संघर्ष के थपेड़े खा रहे हैं, न श्राप तर सकते हैं, न औरों को तार सकते हैं ।

यदि दीपक के पास बेठने से दिखाई दे जाता है, यदि अमृत-पान करने से विष का डर नहीं रहता तो हम कैसे मान लें कि ब्रह्मज्ञान को पाकर भी मनुष्य प्रेत बेताल को पूजने वाला या ऐसी ही अन्य बेहूदा बातों का मानने वाला हो सकता है। किन्तु यह स्पष्ट है कि यह बाहर से गेरुए वस्त्र पहिनने वाले न तो वेदान्ती हैं, न ब्रह्मज्ञानी । इनमें से किसी को शंकराचार्य की टेक है, कोई रामानुज के नाम की लकीर पीटता है। इनमें से आत्मनिष्ठ और ब्रह्मानिष्ठ कोई भी नहीं है ।

मनुष्य में सच्चाई असलियत होनी चाहिये । सत्यप्रियता मनुष्य का गुण हैं । केवल इस बात पर विश्वास कर लेना कि यह शंकर या रामानुज का मत हैं, त्रुटि हैं। वह तो जो कहना था कह गये । आपका भी कुछ अनुभव हैं या यों ही अनाप शनाप सुनाते रहते हो ? आपने स्वयं क्या साक्षात्कार किया ? शंकर और रामानुज का समय तो गया । वह और समय था, अब समय उससे भिन्न हैं। ज़माना बदल गया, लोगों के विचार बदल गये । समयानुसार बात क्यों नहीं करते, क्यों घट-पट के दृष्टान्त देकर खट-पट में पड़े हो ? वेदान्त पुस्तकों में नहीं हैं, वेदान्त तो तुम्हारा मुलतत्व हैं। जो वेद का अन्त हैं वही आत्मा हैं । जो आत्मा हैं वही वेद का अन्त हैं । यह वेदान्त की वास्तविकता और सार हैं ।

(८)

मन की चौंकसी

(सतगुरु के कुछ पत्रों का सारांश)

मनुष्य जो कर्म करता है उसका उसके मन पर अक्स पड़ जाता है और जब मन बाहर से हटकर सोते समय या संध्या करते समय अन्तर की तरफ़ प्रविष्ट होता है तब वह शक्लें सामने आती हैं। इसलिए अभ्यासी को चाहिए कि दुनियाँ के साथ व्यवहार करते समय सचेत रहे और उन्हीं चीज़ों से वास्ता रखे जो ज़रूरी हैं। बेफ़ायदा बातों और कामों में अपने को न फँसाये। ऐसा अभ्यास करते रहने से मन संध्या के समय और ख़्याल नहीं उठावेगा। दूसरे, अपने मन को समझना चाहिए। यह दुनियाँ तो थोड़े दिनों की है। सब चीज़ों को छोड़ना है। इसलिए इस दुनियाँ और इसकी चीज़ों से दिल नहीं लगाना चाहिए, वरना छोड़ते समय बड़ा दुःख होगा। तीसरे, अपने गुरु या परमात्मा के लिए प्रेम अंग जगाना चाहिए जिसका तरीक़ा यह है कि विरह की वाणी के पद गाए जावें जिससे तड़प पैदा हो। ऐसा करते रहने से कुछ दिनों बाद तबियत लगने लगेगी। मन बाहरी चीज़ों का रसिया है। मन को शुरू में अन्दर की तरफ़ मोड़ने में उसको दुःख होता है और वह इससे भागता है। लेकिन अभ्यास करते रहने से और बाहर से तबियत हटा देने से अन्तर की तरफ़ ठहरने लगता है और अन्तर में ठहरने से अभ्यास में आनन्द आता है और अभ्यासी तरक़्क़ी करने लगता है।

मन की चाल जन्म जन्मान्तर से बहिर्मुखी होती आयी है। अन्दर की तरफ़ जाने के लिए इसमें समय की ज़रूरत है। इसलिए अभ्यासी को घबराना नहीं चाहिए बल्कि कर्म करते रहना चाहिए। शुरू में गुरु की पवित्र मूर्ति का ध्यान करना चाहिए। अगर उसमें सच्चा प्रेम और विश्वास है तो मन ज़रूर एकाग्र होकर ठहरने और ऊपर की तरफ़ चलने लगेगा। चलते-फिरते यह ख़्याल रखना

चाहिए कि मेरी जगह गुरु ने ले ली है। मैं वही हूँ यही सहज योग है। इसके अभ्यास के लिए न कोई निश्चित वक्त और न कोई निश्चित जगह है। हरेक मनुष्य हर समय और हर जगह यह अभ्यास कर सकता है।

प्रेम में दूरी नहीं है। अगर सच्चा प्रेम है तो प्रियतम और प्रेमी हर वक्त साथ रहते हैं। अपने आपको नमूना बना कर दिखाने से दूसरों पर ख़ुद-ब-ख़ुद असर पड़ेगा। सन्ध्या में तबियत न लगना यह ज़ाहिर करता है कि अभी तक दुनियाँ की चीज़ों से प्रेम है। यहाँ कोई अपना नहीं, सब धोखा है।

बुराई सब में होती है लेकिन जो बुराई को बुराई समझता है वह बुराई छोड़ देता है। असली अभ्यास यही है कि वह ग्रन्थि जो मन की वजह से पड़ गयी है, खुल जाय और आत्मा आज़ाद हो जाय। बग़ैर मन को काबू किये यह ग्रन्थि नहीं टूटती। मन को काबू करना बहुत मुशिकल होता है। सारे प्रयत्न इसीलिए किये जाते हैं इसको प्रेम की रस्सी से गुरु के साथ बाँध देते हैं शुरू-शुरू में यह बहुत उछलता -कूदता है लेकिन ज्यों-ज्यों गुरु से रिश्ता मज़बूत होता जाता है उतनी ही उसकी उछल -कूद बन्द होती जाती है और एक दिन पूर्ण रूप से गुरु के आधीन हो जाता है और तब ही आत्मा का प्रकाश पूर्ण रूप से होता है।

बग़ैर मन के पूरे तौर से शान्त हुए आत्मा का साक्षात्कार नहीं होता। इसके लिए गुरु की सौहबत (साधना) बहुत मददगार (सहायक) है। जब -जब मौक़ा मिले गुरु का ज़ाहिरी सत्संग करना चाहिए और जब दूरी हो उस समय सुरत शब्द का अभ्यास, जो गुरु का दूसरा रूप है, करना चाहिए।

मन दुनियाँ की चीज़ों में आनन्द पाता है। उसका क़ुदरती झुकाव दुनियाँ के विषयों की तरफ है और वह उसी तरफ़ मनुष्य को ले जाता है। जब आत्मा भी अपने निज आनन्द को भूल कर अज्ञान वश विषयों से मोंहब्बत करने लगती है तो अपने आपको और अपने प्रियतम को भूल जाती है और आवागमन के चक्र में फँस जाती है। एक साथ मन दुनियाँ के विषयों को नहीं छोड़ता और उस तरफ़ ले ही जाता है। लेकिन अगर आत्मा उसमें आनन्द न ले और अपने परमात्मा की तरफ़ फिर जाय या उसको अपना अनुभव हो जाय तो फिर दुनियाँ के विषयों में उसको आनन्द नहीं आता और उनसे प्रीति कम हो जाती है। आहिस्ता-आहिस्ता मन भी उन विषयों को छोड़ देता है।

परमात्मा के दो रूप हैं। एक जो घट-घट में बसता है और दूसरा रूप उसका स्थूल है जो गुरु हैं। शुरू-शुरू में स्थूल रूप से ताल्लुक़ (सम्बन्ध) जोड़ा जाता है। फिर आहिस्ता-आहिस्ता कारण रूप परमात्मा से ताल्लुक़ हो जाता है और इस तरह आसानी से अभ्यासी बहुत जल्दी परमात्मा के प्रेम का पात्र बन जाता है।

परमात्मा के प्रेम के आते ही बुराइयाँ दूर होने लगती हैं और आख़िर में सिवाय उसके प्रेम के और कुछ नहीं रहता। यही मोक्ष और मुक्ति है।

गुरु उसको कहते हैं दुनियाँ में जिससे बेहतर, खुश्तर (आनन्द दायक) और प्यारी वस्तु और कोई न हो और जिसके लिए दुनियाँ की हर वस्तु छोड़ी जा सकती हो। इस तरह आहिस्ता-आहिस्ता दुनियाँ से हटाव और परमात्मा से प्रेम पैदा हो जाता है। मन की उछल-कूद उस वक्त तक बन्द नहीं होती जब तक उसके पुराने संस्कार खत्म नहीं हो जाते और उसके लिए एक उम्र चाहिए। हाँ, ख़ुशक़िस्मती (सौभाग्य) से गुरु या परमात्मा का प्रेम पैदा हो जाय और मन पर कड़ी निगाह रखी जाय, साथ ही साथ परहेज़ किया जाय, तो आहिस्ता-आहिस्ता मन की उछल-कूद बन्द हो जाती है और प्रेम बढ़ने लगता है। लेकिन फिर भी चौंकन्ना रहना चाहिए। न मालूम किस वक्त गिरा दे।

तक़लीफ़ों का सामना करने से शक्ति का विकास होता है। आसुरी वृत्तियों का आना अच्छा है। जब अपने आपको कमज़ोर पाओगे तो दीन होकर परमात्मा को पुकारोगे। ज़रूर मदद मिलेगी। मौहब्बत की ज़्यादती (आधिक्य) से आदमी होश-हवास खो बैठता है। इस मामले में जल्दी नहीं होनी चाहिए, ताकि दोनों काम बनते जावें। परमात्मा या गुरु से सबसे ज़्यादा प्रेम करो ताकि सच्ची ख़ुशी मिले और दुनियाँ से आज़ाद हो जाओ। दुनियाँ को भोगो ताकि पिछले संस्कार समाप्त हो जायें। इस तरह दीन और दुनियाँ दोनों बन जायेंगे, जो लोग परमात्मा और गुरु से सच्चा प्रेम करते हैं, और दुनियाँ में रहते हुए अपने दुनियावी फ़र्ज़ (साँसारिक कर्तव्य) धर्मशास्त्र के अनुसार पूरे करते हैं वे एक ही जन्म में भवसागर से पार हो जाते हैं।

जब तक मन दुनियाँ से बेज़ार (उपराम) नहीं होगा और उससे निराश न होगा, रूहानी तरक़्क़ी (आत्मिक उन्नति) नामुमकिन है। इसका यह मतलब नहीं कि दुनियाँ के काम न किये जायें या ख़्वाहिशात (इच्छाएँ) न उठाई जायें। ख़्वाहिशात का उठना क़ुदरती (स्वाभाविक) बात है, लेकिन ख़ूब समझ लेना चाहिए कि जो होना है वह होकर रहेगा। इन्सान के किये कुछ नहीं होता, और अगर इन्सान के किये कुछ होता भी है तो जितनी ख़्वाहिशात ज़्यादा होती हैं उतना ही दुःख भी ज़्यादा होता है। ख़्वाहिशात अगर पूरी नहीं होतीं तो भी दुःख होता है और अगर पूरी होती हैं तो भी दुःख का कारण बनती हैं। सबसे अच्छा तरीक़ा यह है कि इस बात को जहननशीन (स्मरण) कर लो तथा पुख़्ता (निश्चय) कर लो कि यह दुनियाँ ईश्वर की है, तुम्हारी नहीं। तुम भी ईश्वर के हो और यह सब काम ईश्वर का है। वह जैसा चाहेगा वैसा होगा। अपना बोझ उस पर डाल दो। वह जिस हालत में रखे, ख़ुश रहो। इन्सान की सब ख़्वाहिशात पूरी नहीं होती हैं। वह दुःखी होता है और गढ्ढे में पड़ा रहता है। अगर ख़ुश रहना चाहते हो तो जहाँ उसने रखा है और जिस हाल में रखा है, उसमें ख़ुश रहो। ईमानदारी से काम करो तथा भगवान का नाम लेते जाओ।

हारिये न हिम्मत , बिसारिये न हरिनाम.

जाहि विधि राखे राम, ताहि विधि रहिये

(९)

चेतावनी

परमार्थ पथ पर चलने और उस पर कायम रहने का सिर्फ एक ही तरीक़ा है कि सन्तों के बताये हुए रास्ते पर सख्ती (दृढ़ता) से अमल (पालन) करें और जहाँ तक हो उसे अपनायें और अपनी जिन्दगी का हिस्सा बना लें। लेकिन अफ़सोस है कि सत्संग में दाखिल होकर भी उस पर अमल करने की कोशिश नहीं करते। बरसों गुजर गये लेकिन जहाँ थे वहीं मौजूद हैं। कभी रास्ते पर शुबह (शंका) करते हैं, और कभी अधिष्ठाता पर, लेकिन अपनी कमज़ोरियों को नहीं देखते। इसलिये सन्तों के बताये हुए मार्ग पर चलने को भरसक कोशिश करनी चाहिये।

(१) हरेक सत्संगी का कत्तंध्य है कि वक्त निकाल कर दोनों वक्त संध्या ज़रूर करें। सुबह व शाम की संध्या को किसी बहाने टाल देना उत्साह की कमी ज़ाहिर करता है। यह रास्ते में रुकावट का कारण है।

(२) जहाँ तक मुमकिन (सम्भव) हो भण्डारे में ज़रूर हाज़िर हों। भण्डारे में कोई न कोई ज़रूरी काम निकल आता है और भण्डारे पर जाना मौकूफ (रद्द) हो जाता है। अगर किसी मज़बूरी की वजह से न आ सके तो किसी दूसरे वक्त पर ज़रूर हाज़िरी दें।

(३) अपनी इन्द्रियों को जहाँ तक हो काबू में रखें और दुनियावी ख्वाहिशात (सांसरिक इच्छाओं) को कम करते जायें। ग़लती न करने की अपेक्षा ग़लती करके उसे सुधारना अच्छा है। जिस प्रकार खेत में उपजे हुए ख़ारपात को उखाड़ कर उसी में सड़ने गलने को छोड़ देने से उसकी उपज शक्ति बढ़ती है, उसी प्रकार ग़लतो सुधारने से हृदय बलवान बनता है।

(१०)

इजाजत

(अर्थात ब्रह्मविद्या की शिक्षा देने को आज्ञा)

(लिखित आदेश)

सन्त लोग तालीम (आध्यात्मिक शिक्षा) को जारी रखने के लिए और इस तालीम (ब्रह्मा-विद्या) को फैलाने के लिये कुछ सत्संगी भाइयों को इजाजत दे देते हैं ताकि जहाँ जहाँ वह नहीं जा सकते और उनके बाद भी तालीम का सिलसिला (क्रम) जारी रहे । लेकिन इसमें कुछ गलतफहमियाँ (भ्रम) हो जाती हैं । श्री गुरदेव (परमसन्त श्री रामचन्द्र जी साहब) ने जिन-जिन लोगों को इजाजतें दीं और हरेक भाई की आध्यात्मिक अवस्था को, एक किताब में लिख दिया या और उसको किसी को दिखलाते नहीं थे, ताकि एक का हाल दूसरे पर न खले और बाद उनके बह काम आवे। लेकिन बदक़िस्मत (दुर्भाग्य) से उनके देहान्त पर जब लोग दाहकर्म में लगे थे, किसी रिइतेदार ने उस किताब को गायब कर दिया । इसलिये. जरूरत इस बात को महसूस हुई कि इसकों छिपाया न जाये, बल्कि प्रकाशित कर दिया जाये । दूसरे, गलतफहमियां हो जाती हैं--जिन लोगों को इजाजत

नहीं मिलतो वह समझने लगते हैं कि हम इस लायक नहीं कि हमको इजाजत दी जाये । ऐसा नहीं हैं । सब लोग बी- ए. पास हैं और अगरचे (यद्यपि) बहू बहुत काबिल होते हैं, मगर दूसरों को तालीम देने को हरेक में काबलियत (योग्यता) नहीं होती है । जिसकों अपनों तालीम दूसरों में प्रवेश करने की काबिलियत होती है, उन्हों को तालीम का काम सुपुर्द किया जाता है । चाहे वह ज्यादा क़ाविल न हों । इसलिये जिन भाइयों को तालीम की इजाजत नहीं है, उनको निराश होने की कोई वजह नहीं। ऐसे कई साहिबान (व्यक्ति) हैं जिनकी हालत तालीम करने वालों से कहीं अच्छी है।

तीसरे, इजाज़त उनको दी जाती है जिनको कि तालीम को दूसरों में प्रवेश करने की क़ाबिलियत तो है लेकिन कुछ इखलाक़ी (चारित्रिक) कमज़ोरियाँ ऐसी होती हैं, जिनसे उनकी तरक की रुकी होती है । उनको इजाज़त इस वास्ते दे दी जाती है कि जब उनको कोई जिम्मेवारी का काम दे दिया जायेगा तो वह अपनी कमज़ोरियों को महसूस करेंगे और जल्दी ज़ल्दी उनको छोड़ने की कोशिश करेंगे--जिसमें दोनों का फ़ायदा है ।

चौथे, इजाज़त क़ाबिलियत (योग्यता) पर मुनहस्सिर (निर्भर) है ।

इजाज़तें चार तरह की होती हैं--

(१) इजाज़त सत्संग कराने की (मानीटर पद) ।

(२) इजाजत तालीमी (शिक्षक पद) ।

(३) इजाज़त दीक्षा या नाम देने की या बैत करने की (आचार्य पद) ।

(४) इजाजत मुकम्मिल जिसे इजाजत ताग्राभ्मा या सम्पूर्ण गुरु पदवी कहते हैं ।

(१) कुछ सत्संगियों को जिनसे काम लेना है, चुन लिया जाता है, और उनको मानीटरी की इजाजत (शर्तिया) सत्संग कराने की दे दी जाती है, जिसका मतलब यह है कि वह पुराने सत्संगियों को इकट्ठा करके सत्संग करा सके। नए आदमियों को तालीम करने या बेत करने (दीक्षा देने) की उनको इजाज़त नहीं होती ।

(२) तालीमी इजाजुत- उनमें से जिनको सत्संग कराने की इजाजत दी जाती हे लेता है, उसको तालीमी इजाज दे देते हैं - यानी वह नए आदमियों को तालीम दे सकता है, लेकिन बेत (दीक्षा) नहीं कर सकता ।

(३) उपदेश (दीक्षा) या बंत की इजाजत । जब अम्यासी औौर तरक्की कर लेता है, तो उसकों बैंत की इजाज़त भी दे देते हैं। यानी यह दूसरों को नाम (दीक्षा) दे सकता है, या बैंत कर सकता है ।

(४) मुकम्मिल इजाजत (सम्पूर्ण गुरु पदबी)-यह आखिरी इजाजत है । इसको इजाजत ता अम्मा कहते हैं । बैंत की इजाजत याफ्ताओ (आज्ञा प्राप्त व्यक्तियों में से जो शख्स (व्यक्ति) और तरक्की कर लेते है और सचखन्ड तक पहुँच जाता है, चाहे मुस्तिकिल तौर पर न हों, उसको यह इजाजत ता-अम्मा दे देते हैं। यह ज्यादातर एक या दो को दी जाती है। लेकिन बादफ़ा (कभी-कभी) दो से ज्यादा को भी दे देते हैं। यह तहरीरी (लिखित) होती है । इस पर किसी दूसरे सन्त की तस्दीक़ होती है। इनको पूरे अख्त्यारात होते हैं ।

श्रीकृष्ण

ख् दा खुदा भी करे भौर ख़ दी का दम भी भरे ।
बड़ा फ़रेबी है, भूठा है वो खदाई का।

★ ★

पीया चाहे प्रेम रस राखा चाहै मान ।
एक म्यान में दो खड़ग, देखा सुना न कान ॥

[११]

रामाश्रम सत्संग के शिक्षक वर्ग के लिये अन्तिम आदेश

रुड़की, दिनाङ्कः २९-३-१९६९

श्री गुरुदेव विराजमान थे । प्रातःकाल की पूजा का समय था। जिन अभ्यासियों को तालीम (ब्रह्मविद्या की शिक्षा) का काम सुपुर्द हैं उनके लिए इस प्रकार आदेश दिया :--

(१) किसी भी व्यक्ति को तब तक संत्संग में शामिल नहीं करना चाहिए जब तक यह न देख लो कि इसका इख़लाक़ (आचरण) ठीक है। झूठे, जिनाकार (व्यभिचारी) व्यक्ति को सतसंग में मत लो ।

(१) जब तक मनुष्य यम-नियम का पालन न करे तब तक 'नाम' नहीं देना चाहिए । '

(३) रुपया मत लो अगर आता है तो उसे सत्संग के काम या : कारेखैर (दानपुण्य के काम) में लगा दो । हमेशा चौंकन्ने रहो कि सत्संग का पैसा तुम्हारे निजी खर्चे में न आने पाये वर्ना ढेर हो जायेगा ।

(४) हमेशा औरों की ख़िदमत करना, कराना मत । हमारे गुरु देव का यह उसूल -(सिद्धाँत) था इसी पर दुढ़ रहना चाहिये ।

(५) जो मनुष्य कहीं और 'नाम' (गुरु-दीक्षा) ले चुके हैं, यदि वे आपके यहाँ पड़ताल के लिए आये तो उन्हें Persuade (फ़ुसलाना) मत कीजिये।

(६) गैर आदमी को सत्संग में शामिल मत कीजिये। जो ख़ुशी से आये, हमारी सर्विसेज (सेवाएँ) चाहे, उसके लिए हम तैयार हैं।

(७) हर शख्स (व्यक्ति) को यह तालीम देना कि 'हमारी शक्ल का ध्यान करो' गलत है।

(८) जब कोई अभ्यासी आये तो ये कोशिश हो कि उसका जिक्र (शब्द) जारी हो जाए। अपने आपको ध्यान में ला कर अपने अंदर शब्द जारी करो और ॐ शब्द की ठोकर उसके दिल पर दो। यह तरीका चंचल मिजाज वालों के लिए है। Sober (गम्भीर) लोगों को तवज्जह आगया चक्र पर देनी चाहिए। जब अभ्यासी के अंदर शब्द जारी हो जाए तो फिर उसे शब्द के ध्यान पर लगा दो।

(९) स्त्रियों को कभी हृदय पर तवज्जह मत दो, आज्ञा चक्र पर दो।

(१०) कभी कभी तवज्जह इस तरह भी दो कि अपने अंदर प्रकाश का ख्याल करो कि उसका Focus (अक्स) दुसरे पर पड़ रहा है।

(११) जिनको तालीम की इजाजत ब्रह्म विद्या की शिक्षा देने की आज्ञा है, उन्ही लोगो को तवज्जह देनी चाहिए लेकिन जिनको Monitorship (मानीटरी) की इजाजत है वे सिर्फ सत्संगियों को इकट्ठा करके सत्संग करें।

(१२) जिनको तालीम कि इजाजत है उन्हें लिख कर दे दी गयी है। उपदेश कि इजाजत सिर्फ सरदार जि (डा० करतार सिंह जी), वसन्त बाबू (डा० वृजेन्द्र कुमार सक्सेना) और डाक्टर हरी कृष्ण जी को है।

(१३) अगर लय अवस्था नहीं आती है तो तवज्जह नहीं देनी चाहिए। यह ख्याल करके कि "मैं नहीं हूँ, गुरु हैं, तब तवज्जह दो।

(१४) स्त्रियों को जहाँ तक हो तवज्जह न दें और दें तो आज्ञा चक्र पर दें Widows (विधवाओ) को सत्संग में तब तक शामिल न करें जब तक खूब आजमा न लें।

(१५) औरतों में हिल्त-मिल्त (Mix up घुलें-मिलें) नहीं यही ढेर कर देगा ।

(१६) हमारे यहां दो चीजों से सत्संग से अलहदा कर देते हैं ।

(i) बदऐतकादी (अविश्वास) और (7) ज़िनाकारी (व्यभिचार, परस्त्रीगमन) ।

(१७) अभ्यासी जितना ऊंचा होता है उतना ही ज़्यादा उस पर माया का हमला होता है। किसी स्त्री के फेर में पड़ जायगा, कीर्ति बढ़ेगी जिसके फलस्वरूप वह सोचेगा कि मैं गुरु हो गया, अगर ऐसा हुआ तो मारा गया। गुरुदेव कहते थे कि मैं तो धोबी हु, जो कोई मैले कपड़े लाता है उन्हें धो देता हूँ । गुरु तो ईश्वर है ।

(१८) कभी अपने आपको गुरु मत समझो, सेवक समझो ।

(१९) तमोगुणी और रजोगुणी मन तो धोखा देता ही है मगर सतोगुणी मन भी फंसाता है ।

(२०) सेवा करो ईश्वर को खुश करने के लिए, बदले के लिए नहीं ।

टीप्पणी - पूज्य गुरुदेव परमसन्त डा० श्रीकृष्ण लाल जी का शहफी में यह प्रन्तिम भण्डारा था जो उनके पार्थिव शरीर के रहते हुआ था। उपरोगत भ्रादेश गोपनीय समझने चाहिए । यह केवल उन भाइयों के लिए हैं जिनको वे शिक्षा का काम लिखित आदेश देकर सौंप गये हैं। इस भ्रादेश के अतिरिक्त आध्यात्मिक शिक्षा सम्बन्धी प्रति गोपनीय अन्य आदेश भी हैं जो व्यक्ति विशेष से सम्बन्ध रखते हैं प्रौर केवल अत्यन्त अन्तरंग भक्तों तक सीमित हैं। इन आज्ञाओ का पालन भरसक हो, यही गुरु की सच्ची सेवा है । म० च्०

(१३)

परमार्थ में मन का आलस्य

परमार्थ के मामले में मन बड़ा आलसी है। उस ओर इसका ध्यान नहीं जाता और उसमें बेपरवाही करता है। इसका कारण यह है कि मन रात-दिन दुनिया और उसके सामान की चिंता में लगा रहता है । अतः साधक को चाहिये कि निरन्तर सजग रह कर मन की चौंकीदारी करे । दुनिया की चिन्ता इसलिये करता है कि एक तो जन्म जन्मान्तर से उसका स्वभाव ही ऐसा बन गया है, दूसरे ईश्वर की प्रीति, प्रतीत और भगवत-शरण की कमी है । इसलिए इस बात पर बल देना चाहिए कि शरण दृढ़ हो ऐसा करने के लिए यह आवश्यक है कि यह विश्वास हो जाय कि जो कुछ होता है प्रभु की इच्छा से होता है और उसी में हमारा कल्याण है। संसार की चिन्ता छोड़कर परमार्थ की चिन्ता करनी चाहिए। इससे विरह् की भावना जागेगी, हृदय के कपाट खुलेंगे और प्रभु के प्रति प्रेम पैदा होगा । परमार्थ-सुखमय हो जायगा। जीवन में शान्ति और आनन्द् विकसित होने लगेंगे ।

जैसा कि पहले कहा गया है कि परमार्थ के विषय में मन का स्वभाव आलसी है। बिना पुरुषार्थ और अभ्यास के अथवा बिना दबाव में रहे हुए यह चाहता है कि रस और सुख मिल जाय । कभी-कभी तो संसार की बातो में भी इसमें आलस्य देखने में आता है और यही चाहता है कि बिना मेहनत किये संसार की वस्तुएं प्राप्त हो जायें । किन्तु यह दुनिया काल देश है, यहाँ मनुष्य मन के आश्रित है। बिना मन के काम नहीं चलता है । संसार में जो भी काम करता है उसका प्रत्यक्ष फल मिलता है इसलिये उस शोर ध्यान जहदी जाता है भ्रौर उसको प्राप्त करने के लिए परिश्रम करने लगता है। परमार्थ कमाने और प्रभु के धाम में पहुँचकर वहाँ का सुख और रस प्राप्त करने के लिए उसका ध्यान नहीं जाता और इस काम में बड़ा आलस, सुस्ती और बेपरवाही करता है।

मन का ऐसा स्वभाव बन गया है कि संसार की चिंता में और उसके पदार्थों को पाने की उधेंड-बुन में रात दिन व्यस्त रहता है । इस बात की चिन्ता बिल्कुल नहीं है (या है तो बहुत कम) कि हमारा परमार्थ सुधरे और अमर सुख व अमर आनन्द की प्राप्ति हो । जब कभी सत्संग में जाता है और सतगुरु के वचनों को सुनता है, उनके प्रेम की डोर में खिंचने लगता है तब कुछ देर के लिए चेत जाता है और चिन्तित होकर अपना ध्यान परमार्थ की ओर लगाता है । किन्तु दो-चार दिन के पश्चात फिर अपनी पुरानी चाल पर झा जाता है और परमार्थी कार्यवाही में सुस्ती व ढीला-पन करने लगता है। इसलिए सदा, सब समय, सब परिस्थितियों में सजग रह मन की चोकीदारी करनी चाहिये । जब-जब सुस्त होकर बेठे प्रभु की याद से गूफिल हो, उसको उठाना चाहिए । जिन-जिन निरर्थक कामों में वह उलझे या बहाना बनाकर समय निकाल कर परमार्थी कायंवाही से हटे, उनसे चौंकन्ना रहना चाहिये और उसे खैंचकर परमार्थ की ओर लाना चाहिये | और बलपूर्वक उसे उसी में लगाये रखना चाहिये । एक-दो दिन में तो यह काम होता नहीं, यह अभ्यास तो निरन्तर करना पड़ेगा। एक-दो दिन को ढील देना भी अहितकर है । सन्तों ने कहा है कि हवा को मुट्ठी में बन्द कर लेना भले ही सहज हो किन्तु मन को वश में करना महा-कठिन है। अब प्रश्न उठता है कि यदि मन को वश करना इतना कठिन है तो फिर यहू क्यों -कर वश में हो सकेगा । इसका उत्तर संतों के पास है। वे कहते हैं कि इसे गुरु-प्रेम की डोर से बाँध दो हजार उछल कूद करेगा लेकिन अंत को वह डोर इसे जाने नहीं देगी, थक-धकाकर बैठ रहेगा और उनकी कृपा से एक दिन ऐसा आयेगा कि यह सब कलाबाजियाँ छोड़ देगा।

गुरु प्रेम से खिचे रहकर कुछ दिनों के निरन्तर अभ्यास से मन की सुस्ती और आलस की आदत कम होती जायगी और कभी न कभी छूट जायगी । चाहिये यह कि मनुष्य का सात्विक मन (Upper mind) जिस में परमार्थ का अंग विशेष है नीचे के मन ([Lower mind) पर कोंचा कोंची

करता रहे, उस पर सदा आघात करता रहे और हमेशा उसे जगाये रखे, सोने न दे । जब कभी एकान्त में बैठो तो अपने मन से पूछो कि अरे मन, तू परमार्थ के लिए जिससे हमेशा का सुख ओर शान्ति प्राप्त होती है, क्यों नहीं प्रयत्न और मेहनत करता है ? इस तरह उसे समझा -समझा कर रास्ते पर लाना चाहिये और बार-बार सत्संग सद्गुरु के चरणों में बैठकर करना चाहिये । इससे मन की सफाई होती रहती है ।

मन की आदत है कि जब-जब सत्संग में जाता है और अभ्यास में लगता है तो सो जाता है या इस क़दर दुनिया के विचार उठाकर उन में उलझ जाता है कि कि यह ख़बर भी नहीं रहती कि मैं कहाँ बैठा हूँ और क्या कर रहा हू'। रोज इसी तरह करता है और इसको कुछ होश रहीं रहता । यह अमूल्य समय का वृथा खोना है । इस प्रकार नियम पूर्वक सत्संग में बैठ जाने से कर्मफल भले ही मिल जाय किन्तु जब तक जाग कर होश्यारी के साथ अभ्यास नहीं करेगा तब तक परमार्थ तो मिलता नहीं।

वास्तव में बात तो भहूँ है कि तो हे को प्रभु की प्रीति और प्रतीत है और न ही उसने सतगुरु की शरण दृढ़ता पूर्वक पकड़ी है। बिना शरण लिये कर्म नहीं कट सकते हैं और जब तक कर्मों का वेग हल्का न तब तक मन का पूरा ध्यान परमार्थ कि ओर नहीं जाएगा । इसलिए इस बात पर बल त देना चाहिये कि सत्गुरु की शरण दृढ़ता पुर्वक पकड़े । संसार में काम चलाने भर के लिये जितनी चिंता और उद्यम की आवश्यकता हो, समय और परिस्थिति के अनुसार उसे करने में कोई हर्ज़ नहीं है किन्तु वह भी सत्गुरु का सहारा लेकर करे। दुतिया की आशा लेकर उसमें चिंतित रहना परमार्थी के लिये वर्जित है । वह चिंता उसे परमार्थ में नहीं लगने देगी । इसलिये शरण ऐसी दृढ़ता से ग्रहण करनी चाहिए कि अपने सब संसारी कामों और व्यवहारों को प्रभु की इच्छा और मौज के आश्रित करके उनसे निश्चिन्त हो जाय । ऐसा तभी कर सकेगा जब इस बात का दृढ़ विश्वास हो

जाय कि जो कुछ होता है प्रभ् की मौज से होता है। बिना उस मालिक की मौज के कुछ नहीं होता चाहे मैं लाख उपाय करूँ। सस्त सत्गुरु ही मेरे सच्चे माता-पिता हैं, वे ही सच्चे हितकारी हैं, उनकी मौज में ही मेरा परम कल्याण है। संसार की चित्ता छोड़ कर झौर झपने सब कारोबार मालिक के हवाले करके परेसार्थ को चिन्ता करती चाहिये, उसकी याद बराबर रहनी चाहिए जेसे तुम्हारा दामनगीर हो । जैसे फोड़े की चसक रात को नींद तहीं आने देती, ध्यान उसी तरफ़ रहता है इसी तरह परभार्थ की चित्ता तुम्हारी नींद उड़ा दे, ईश्वर प्रेम और उसके विरह की आग तुम्हारा कलेजा फूक दे, मन की वासनाएँ उसमें जल कर भस्म हो जायें झौर अंत में एक मालिक के सिवाय और कुछ शेष न रह जाय । इस हालत पर पहुंचने के लिए मन से हमेशा चौंकनन्ना रहना चाहिये । कभी इस चिन्ता से अचिन्त न होने पाये ।

इस प्रकार की चिन्ता विरह को जन्म देती है और विरह से चक्रों के कपाट खुलते हैं परमार्थ पथ में अठारह चक्रों को पार करना पड़ता है । जब तक विरह की भावना नहीं जागेगी इन चक्रों के पट किस तरह खुलेंगे ? प्रभु के लिए अकुलाहट और घबराहट पैदा करने की आवश्यकता है तभी इस सुख-दुःख की द्वन्द भरी दुनिया से छूट सकोगे, वरना कैसे मालिक के धाम में पहुँच सकोगे ? विरह, अकुलाहट आ्ने पर प्रेम जागेगा और प्रेम आने पर मार्ग सुगम हो जायगा। मंजिल भले ही बहुत दूर हो परन्तु प्रेम के द्वारा वह दूरी कम हो जाती है उसकी सब रुकावट विरह दूर कर देता है।

जब संसार की चिन्ता और फिक्र कम होगी तो मन का जगत में पसारा कम रहेगा, इससे परमार्थी कमाई में सहायता मिलेगी । वास्तव में करना तो यही है कि अभ्यास के समय ख़ास तौर से और बाक़ी सब समय अपने मन का एक अंग ऊँचे स्थान पर यानी सत् की ओर लगा ही रहे । इससे दुनिया के दुख दर्द भी कम व्यापेंगे । जो कुछ दुःख की हालतें कर्मानुसार आनी हैं वे तो सब आयेंगी ही पर उनका प्रभाव कम मालूम होगा । जैसे कहीं आग लगी हो और दूर खड़े हों तो उस

आग की गर्मी तो अवश्य लगेगी । दुनिया की हल-चल में हाय तोबा नहीं मचेगी । हर दशा में सन्तुलन रख सकेगा । मन के सिमटाव और खिंचाव (सिमटाव दुनिया से और खिंचाव प्रभु के चरणों में, परमार्थ की ओर) की हालत बढ़ते-बढ़ते तीसरे तिल योगियों का दशम द्वारा या और ऊँचे स्थान पर अधिकतर ध्यान ठहरा रहेगा मानों वह आठों पहर मालिक के दरबार की हाजिरी होगी । और उस ध्यान में जो कर्म करेगा वह सब मालिक की सेवा होगी । जब दुनियाँ का काम-काज करेगा तो वही धार नीचे उतर कर यहाँ का सब काम लेगी फिर स्वतः ऊपर को खिंच जायेगी ।

दस साथ से संसार के व्यवहार में कोई नुक़सान और हर्ज़ नहीं होगा। जो मनुष्य के भाग्य में है वह तो मिलेगा ही, उसके लिए केवल उद्यम करना पड़ता है। पुरुषार्थ करना पड़ता है। परमार्थ करना पड़ता है परमार्थ के लिए, और यदि पुरुषार्थ करने में उच्चयम की कमी हो जाय या थोड़ा-बहुत दुनिया का नुक़सान भी हो जाय तो उसका ख्याल नहीं करना चाहिए। यह दृढ़ विश्वास रखना चाहिए कि यदि कोई काम अटकेगा भी तो मालिक ख़ुद उसका प्रबन्ध कर लेंगे ।

मालिक की याद से ग़ाफिल न हो और मन में धीरज रखो। सब उल्टी-सीधी हालतें आयेंगी और चली जायेंगी । आंधी आती है, बर्षा लाती है, शीतलता छोड़ जाती है ।

संसार कपे पतितो हागाधे, मोहान्ध पूर्ण विषयातिसक्तः । क़रावलम्बं मम् देहि नाथ,

गोविन्द दामोदर माधवेति ॥ मोह में अन्धे और विषयों में आसक्त हम पतित संसार रूपी कुएं में डूबे जा रहे हैं । अपने हाथों का सहारा देकर हे नाथ ! हमें उबार लीज़िये। हे गोविन्द, हे माधव ! हम आपकी शरण हैं ।

(१४)

आन्तारक अभ्यास के दो

प्रारम्भिक चक्र

(प्रवचन गुरुदेव--बक्सर (बिहार) १९-१-६९)

सन्तमत के आचार्य जिज्ञासुओं को आन्तरिक अभ्यास बहुधा दो में से किसी एक चक्र से शुरू कराते हैं । (१) हृदय चक्र से जो वक्षस्थल के बाई ओर Nipple के एक इंच अन्दर की तरफ है जहाँ पर धड़कन होती है । (यहाँ मनुष्य का रजोगुणी मन होता है) (३) आज्ञाचक्र (दोनो भौंहों के बीच में एक इंच नीचे (भीतर) का स्थान) । यह बात जिज्ञासु के मन की हालत पर निर्भर होती है। मन की तीन अवस्थायें होती हैं- (१) तमोगुणी मन (२) रजोगुणी मन, और (३) सतोगुणी मन । तमोगुणी मन सब से निचली अवस्था है जिसमें मनुष्य की हैवानी (पाशविक) वृत्तियाँ बलवान होती हैं और ऐसे आदमियों के लिए परमार्थ कोई मायने नहीं रखता । तमोगुणी मन को सूफियों में सिफ़ली मन कहा है । यह "नफ्से अम्मारा' का मुक़ाम है यानी हैवानी (पाशविक) वृत्तियाँ यहीं से शुरू होती हैं । बीच का मन रजोगुणी मन कहलाता है जो सूफियों का "नफ्से लव्वामा' का मुकाम है, यानी यहाँ पर अच्छी और बुरी वृत्तियाँ मिले जुले रूप में रहती हैं। सतोगुणी मन सबसे ऊपर का मन है जिसे सूफियों में 'उलवी' मन कहा गया है। यह "नफसे मुतमय्यना' का मुकाम है यानी इस

हा पर सत् वृत्तियाँ काम करती हैं।

तमोगृणी मन वालों के लिए आन्तरिक अभ्यास नहीं बताते बल्कि किसी कर्म पर डाल देते हैं, जैसे किसी नाम का मौखिक उच्चारण, माला का जाप, इत्यादि । यदि इस अभ्यास को करते रहें तो वे आलस्य, मैथुन तथा क्रोध आदि तामसिक वृत्तियों से ऊपर उठ जायेंगे और आन्तरिक अभ्यास के अधिकारी बन जायेंगे ऐसे लोगों के लिये सन्त मत नहीं है । सन्तमत का अभ्यास अधिकतर उन

लोगों के लिये है जो रजोगुण की अवस्था में है या उससे ऊँचे उठकर सतोगुण की अवस्था पर आ गये हैं। तमोगुणी मन का स्थान टँडी (नाभि) पर है और उलवी यानी सतोगुणी मन का स्थान आज्ञाचक्र पर है। हृदय चक्र इन दोनों के बीच में आता है। विचार हृदय से ही उठते हैं। तमोगुणी मन नीचे की ओर खींचता है और सतोगुणी मन ऊपर की ओर। दोनों में संघर्ष और खींचातानी बनी रहती है जिसे देवासुर संग्राम कहा गया है। जब तक मनुष्य इन्द्रिय-भोग और मन की इच्छाओं को पूरा करने में लिप्त रहता है तब तक उसका झुकाव नीचे की ओर रहता है और जब उनसे हटकर सत्विचार और सत्कर्मो की ओर झुकता है तब उसकी चढ़ाई ऊपर की ओर होती है और वह 'सत् पर आ जाता है। ब्रह्माण्डी मन तक सतोगुणी अवस्था रहती है और उससे ऊपर जाने पर मन नीचे रह जाता है और आत्मा शान्ति का अनुभव करने लगती है।

जो आदमी चंचल स्वभाव के होते हैं उन्हें हृदय चक्र से और जो गम्भीर स्वभाव (sober mind) के होते हैं उन्हें आज्ञा चक्र से अभ्यास शुरू कराते हैं। हृदय चक्र पर अभ्यास (प्रकाश का ध्यान) करने से मन शांत होने लगता है और सतोगुण की तरफ़ रुजू होने (झुकने) लगता है। सतोगुण पर पहुँच कर अभ्यासी Sober (गम्भीर) होने लगते हैं और अभ्यास करते-करते वे आज्ञा चक्र पर टिकने लगता हैं। उनकी सुरत नीचे के स्थानों से निकल कर ऊपर स्थित हो जाती है। पाँचों दुश्मन (काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार) उनके क़ाबू में होते हैं। माला का सुमेर का दाना सबसे ऊँचे स्थान पर रहता है और सबको काबू में किये रहता है, इसी तरह जब सुरत चढ़ कर ऊचे स्थान यानी आज्ञा चक्र में स्थित हो जाती है तो नीचे के सब चक्रों तथा उनसे उठने वाली वृत्तियों को क़ाबू में किये रहती है।

मनुष्य के शरीर में दो शक्तियाँ काम कर रही हैं। एक का रुख (गति) बाहर को है और दूसरी का अन्दर को। मन का रुख बहिर्मुखी है और आत्मा का रुख अन्तर्मुखी। जब मन बाहर

से मुड़कर अन्दर को चाल चलने लगता है और शुद्ध हो जाता है तब वह आत्मा में शामिल हो जाता है यानी बजाय आत्मा पर हुकूमत करने के वह उसकी मातहती (आधीनता) में आ जाता है। और जब आत्मा के ऊपर से इच्छाग्रों के आवरण दूर हो जाते हैं तब बह शुद्ध होकर ईश्वर से मिल जाती है । यही मोक्ष है ।

तमोगुणी मन मनुष्य को इन्द्रिय भोगों में फँसाता है और रजोगुणी मन वासनाओं में । इन दोनों को साधकर सतोगुणी मन में मिला दो और ऊपर की ओर चलो । जब तक मनुष्य दुनियादार रहता है तब तक रजोगुणी मन में व्यवहार करता है यानी रजोगुणी मन में ही तामसिक और सात्विक वृत्तियां मिलाये रखता है। परमार्थी अभ्यासी तमोगुणी अवस्था को पहले रजोगुणी अवस्था में मिलता है और फिर वहाँ से भी उसे ऊपर खेंच कर सतोगुणी मन में मिला देता है । इसके बाद यह तीनों मन आत्मा में मिल जाते हैं, और आत्मा ईश्वर में लय हो जाती है।यही समाधि अवस्था है।

दुनियादारों को फ़िक्र इन्द्रिय भोग की रहती है । वे ऊपर के दो मनों को (यानी सतोगुणी मन और रजोगुणी मन) को नीचे खैंच लेते हैं और गिरते चले जाते हैं, यहाँ तक कि जानवर दशा को पहुँच जाते हैं । इसलिये अभ्यासी का कर्तव्य है कि कोशिश करके अपने मन को तम और रज से खैंच कर सत पर ले आवे, ईश्वर पर भरोसा रखे और सन्तों का संग करे तो आसानी से भवसागर से पार हो जाता है । जो लोग यह सोचकर बैठ जाते हैं कि ईश्वर कृपा करेगा तो सब ठोक हो जायगा और वे भवसागर पार हो जायेंगे, वह सोचना भूल और आलस्य है । ईश्वर उनको सहायता करता है जो स्वयं पुरुषार्य करते हैं ओर उसको ओर चलते हैं। खाली सोच लेने से और हाथ पर हाथ रख कर बैठ जाने से कुछ नहों होगा । तम और रज से निकलना अपना कर्तव्य है ओर सत् से ऊपर उठाकर ईश्वर से मिला देना, यह ईश्वर करता है । जब तक

तम और रज में रहता है ईश्वर कृपा नहीं होती । सतोमुणी मन तक तो खुद कोशिश करके आना पड़ेगा। उसके बाद गुरु-कृपा और ईश्वर-कृपा होगी ।

ईश्वर कृपा बहुत नाजूक है। वह opposition (विरोध) बरदाश्त नहीं करती । जरा सी opposition (विरोध) होने से अन्दर को गुम हो जाती है। इसलिये जब तक मन इन्द्रियों में फंसा रहता है, उसमें ख्वाहिशें (ईच्छायें, वासनायें) रहती हैं और वह तरंगें उठाता रहता है, उस वक्त तक ईश्वर कृपा गुप्त रहती है। जब मन झान्त होकर सत पर आ जाता है तभी ईश्वर कृपा काम करती है और काम करती मालूम होती है। इसके पहले ईश्वर कृपा नहीं होती ।

यह काम रूपये से नहीं होता । हाँ, गुरु उससे (शिष्य से) खर्च कराता है, खैरात कराता है अच्छे कामों में रुपया लगवाता है जिससे रूपये से मोह टूटे । किन्तु यदि यह ख्याल मौजूद है कि मैं खैरात कर रहा हूँ तो फिर दुनिया में आना पड़ेगा क्योंकि इस मृत्युलोक में हर चीज का बदला है। इससे अच्छा यह है कि खैरात करो और कुछ न चाहो । सन्त लोग रुपया लेकर अपने इस्तेमाल में नहीं लाते, वे उसे खैरात कर देते हैं या किसी नेक (भले) काम में लगा देते हैं । यह उनकी बड़ी कृपा है और बड़ा उपकार है क्योंकि इससे बन्धन भी टूट जाता है और उसके फल की भावना भी नहीं उत्पन्न होती, बदला लेने नहीं आना पड़ता । कितना उपकार किया उन्होंने !

जब तक आप धर्म के काम नहीं करेंगे, बुराई को छोड़कर नेकी पर नहीं आयेंगे, तम और रज से ऊपर उठकर सत् पर नहीं आयेंगे, तब तक गुरु कृपा नहीं होगी । जब तक आप सात्विक वृत्ति पर नहीं आयेंगे और धर्म पर नहीं चलेंगे तब तक आप गुरु के प्यारे नहीं बनेंगे । गुरु के प्यारे हो जाने पर सतृगुरु आपको नीचे से उठाकर आत्मा का अनुभव करा देंगे। ऐसा कहना कुफ़ का कलमा है ? लेकिन क्या करें, ईश्वर ने यही नियम बनाया है । हम अपना हाल सुनायें । बचपन में हमें भगवान्

से बड़ी मौहब्बत थी और उनकी याद में हम रोया करते थे। भगवान् कृपा करके हमें स्वप्न में दर्शत दिया करते थे, भविष्य में होने वाली बातें बता दिया करते थे और एकाध बार उन्होंने इम्तहान के सवाल भी बताये। जब से गुरुदेव की शरण में आये तब से सब गायब हो गया, न दर्शन होते थे और न भविष्य की बातें मालूम होती थी। हमने सोचा कि अपनी स्थिति से गिर गये। लेकिन नहीं, कृष्ण भगवान् की ही कृपा से सन्त से मेला हुआ, सद्गुरु मिले और उनकी कृपा हुई तो उन्होंने उठाकर भगवान् से मिला दिया। रामायण में आया है :--

सातवें सम मोहि मय जग देखा, मोते सन्त अधिक कर लेखा।
राम सिन्धु धन सज्जन धीरा, चन्दन तरु हरि सन्त समीरा।
सब कर फल हरि भगति सुहाई, सो बिन सन्त न काहू पाई॥

अच्छे और बुरे ख्याल पिछले संस्कारों के कारण आते हैं। जब बुरे ख्यालों का वेग होता है तब हम दुनिया की तरफ भागने लगते हैं और जब सद्विचार उदय होते हैं तब हम ईश्वर की तरफ़ चलने लगते हैं। मनुष्य अपने पुरुषार्थ से सात्विक अवस्था तक भले ही पहुँच जाय मगर सात्विक अवस्था से ऊपर आत्मा के स्थान पर बिना सन्त की कृपा के नहीं पहुँच सकता। अगर सन्तों के सत्संग से अपना सच्चा कल्याण चाहते हो तो पहले तम और रज से निकल कर सत पर आओ। तब वे कृपा करेंगे और उसके साथ ही साथ ईश्वर कृपा होगी।

जब कोई सन्त यह देखता है कि उसके जाने का समय आ गया और उसके शिष्यों में से अभी कोई इस योग्य नहीं हुआ जो उसके बाद मिशन को आगे चलाये तब वह अपने परम प्रिय शिष्य को अपनी शक्ति से ऊपर खैंच कर आत्मा के दर्शन करा देता है लेकिन जब तक उस शिष्य का मन पूरी तरह सत् पर नहीं आ जाता तब तक उसकी स्थिति आत्मा में स्थायी (Permanent) तौर पर नहीं हो पाती, वह नीचे गिर जाता है। लेकिन यह नहीं होता कि वह नीचे ही गिरा रहे। उस

आत्म दर्शन की याद, उसका प्रेम और उसका आकर्षण उसे नीचे नहीं रहने देता । धीरे धीरे अभ्यास करके वह ऊँचा उठता जाता है और एक दिन ऐसा आता है जब उसकी स्थिति आत्मा में स्थायी (Permanent) तौर पर हो जाती है। जो होना है वह तो होना ही है, उसे आप रोक नहों सकते और न उसको रोकना आपके वश की बात है। इसी को तक़दीर कहते हैं । लेकिन उसके प्रभाव से बचना आपके हाथ में है। आगे के लिए तक़दीर का बनाना आपके हाथ में है और इसके लिये जो यत्न किये जाते हैं उसी को तक़दीर (उद्यम) कहते हैं । अगर हजार कोशिश करने पर भी और आपके हरचन्द रोकने पर भी भोग के ख्याल आने से नहीं रुकत तो समझ लो कि पिछला संस्कार है । अगर मजबूरी को भोगना पड़े तो भोगते समय उसके ख्याल से ऊँचे उठ जाओ, अपनी सुरत (Attention) को मालिक के चरणों में लगा दो । इसका नतीजा यह होगा कि उस भोग में आनन्द नहीं आयेगा और यदि आयेगा भी तो किसी क़दर कम । इस तरह अभ्यास करते-करते उस भोग से मन उपराम हो जायगा और एक दिन ऐसा आयगा कि उस भोग का ख्याल भी नहीं उठेगा । जो ईश्वर सत्-चित्-आनन्द है वही आत्मा है। अन्तर केवल इतना है कि आत्मा के साथ मन की गांठ बँधों हुई है । मन से न्यारी हो जाय फिर तो वह ईश्वर ही है । गंगा का जल जब समुद्र में मिल जाता है फिर वह गंगाजल कहां रहा, वह तो समुद्र हो गया । जो शक्ति ईश्वर में है वही शक्ति आत्मा में है । समुद्र में जब ज्वार आता है तब वह गंगा में घुस आता है तब वह गंगा नहीं है, वह तो समुद्र है । सन्त लोग मनुष्य चोले में ईश्वर से भरपूर होते हैं । जो कुछ वे कहते हैं ईश्वरीय वाक्य होता है । उनके मन की ग्रन्थि नहीं होती - इसीलिए कहा है:-

सन्त वचन पलट नहीं, पलट जाय ब्रह्माण्ड ।

जो व्यक्ति राजसी वृत्ति के हैं, जिनका मन अभी चंचल अवस्था में है, कभी तम पर चला जाता है, उन्हें सन्तजन आन्तरिक अभ्यास हृदय के स्थान से आरम्भ कराते हैं। जब हृदय शान्त होगा, चंचलता दूर हो जांयगी तब ऊपर को चढ़ाई करेगा । अगर उसे आज्ञा चक्र से शुरू कराया जाय तो रज के ख्यालात नीचे को खीचेंगे । अगर अभ्यास ऊँचे स्थान से करेगा तो कशमकश (संघर्ष) ज्यादा रहेगी । तरक्की जल्द नहीं होगी, हालत से गिर जायगा। जो व्यक्ति सात्विक वृत्ति के हैं, गम्भीर और शान्त तबियत के हैं उन्हें आन्तरिक अभ्यास आज्ञा-चक्र से शुरू कराते हैं ।

---

१) अपने झ्राप को ईश्वर की राह में मिटा दो ।

२) जीते जी मरना सीखो ।

(३) दुनिया को भोगो और ईश्वर को चाहो ।

४) ईश्वर की माया का निरादर मत करो।

५) रंज व खुशी को एकसा समझो यानि दुःख को भी उतना ही खुसी से भोगो जैसे सुख को खुश होकर भोगते हो ।

(६) यह सोचो कि सब मुझसे बड़े और मुझसे ज्यादा जानते हैं ।

(७) दुनियां की हर चीज नाशवान है । सदा रहने वाला सिर्फ एक ईश्वर है ।

(८) ईश्वर से दुनियां मत मांगो, उससे उसका प्रेम मांगो ।

(परमसंत डा० श्री कृष्णलाल जी महाराज)

(१४)

सन्तों का तरीका

(बक्सर (बिहार) दि० १६-१-६६ प्रातः)

आदमी की ज़िन्दगी का आदर्श है कि वह साँसारिक व्यवहारों को और कर्तव्यों को धर्मशास्त्र के अनुसार पूरा करत हुए ईश्वर को प्राप्ति कर ले। इसका सबसे सरल साधन सन्त-मत मं है। इसमें फ़ायदा यह है कि पिछले संस्कार आसानी से कट जाते हैं, आगे के लिए उनका सिलसिला खतम कर दिया जाता है और गुरु कृपा व उनके सत्संग से आत्मा शुद्ध और निर्लेप होकर अपने अंशी परमात्मा में लीन हो जाती हैं। जो तरीक़ा इस अभ्यास को बताता है उसी को "सन्त-मत' कहते हैं और उसमें दूसरे मतों के मुक़ाबले में बहुत सी सुविधायें और विशेषतायें हैं।

(१) सन्तों का तरीक़ा सारे संसार में एक ही है चाहे वह कोई भी धर्म हो। युगानयुग से एक ही साधन चला आ रहा है और वह है "गुरु चरणों में सच्चा प्रेम और समपर्पण।" फ़कीरों का तरीक़ा प्रेम का तरीक़ा है और यही रास्ता ईश्वर की प्राप्ति के लिये सबसे सरल और सबसे छोटा है। प्रत्येक जीव में आत्मा है, वह परमात्मा का अंश है। आत्मा को परमात्मा से क़ुदरती (स्वाभाविक) प्रेम है। वह उससे मिलकर एक हो जाना चाहती है। परन्तु जन्म जन्मान्तर की इच्छाओं, वासनाओं और शुभाशुभ कर्मों के कारण संस्कारों की एक गाँठ बन गई है जिसे 'मन' कहते हैं। यही पर्दा है जो आत्मा और परमात्मा के बीच में बाधक है और दोनों का योग नहीं होने देता। सन्त उस गाँठ को गुरु मत में अपनी कृपा से खोल देता है। आत्मा और परमात्मा के बीच का पर्दा हट जाता है और दोनों मिल कर एक हो जाते हैं। यही मनुष्य की ज़िन्दगी का आदर्श है।

हमारे यहाँ सन्त मत में गुरु शब्द दो तरह से प्रयोग होता है। गुरु नाम है उस आदि शक्ति का जो तमाम दुनिया का आधार है, जो एक है, जो न कभी पैदा होता है और न कभी मरता है, हमेशा से है

और हमेशा रहेगा । वही अमर आनन्द, अमर शान्ति और ग्रमर जीवन का स्रोता है । सब स्थावर जंगम और चरा-चर उसी से उत्पन्न होते हैं और उसी में समा जाते हैं । जीवों के उद्धार के लिये वह संत रूप में ग्रवतरित होता है ओर उन्हीं की सरल भाषा में उन्हें समकाता है, रास्ता दिखाता है शोर उनके मन की गांठ खोलकर उन्हें परमात्मा की प्राप्ति करा देता है । दूसरे लोग वे हैं जो गुरु के जीवन काल में उसके सम्पूर्ण शरणागत होकर अभ्यास करते-करते परमात्मा तक पहुंच जाते हैं । ये लोग भी सन्त और गुरु कहलाते हैं और जीवों के उद्धार का काम जो सन्त मत का मिशन है जारी रखते हैं ।

(२) इसकी दूसरी विशेषता यह है कि इसमें केवल 'एक' परमात्मा को मानते हैं। देवी देवताओ की पूजा नहीं होती लेकिन उसका निरादर भी नहीं होता । सांसारिक व्यवहार, धर्म नीति आदि पर धर्म शास्त्र के अनुसार चलना सिखाते हुए ईश्वर की प्राप्तिका तरीक़ा और अभ्यास बताते हैं ।

(३) कोई भेदभाव हिन्दू, मुसलमान, सिख , ईसाई और ऊँच-नीच का नहीं है । जो सन्त-मत के रास्ते पर चलेगा ईश्वर तक पहुँच सकता है । इसका साधन करके इस दुतिया खुशी प्राप्त करता है और आवागमन के चक्र से हमेशा के लिये छूट जाता है ।

(४) इसमें किसी के लिये रुकावट नहीं है। दस वर्ष के बच्चे से लेकर बूढ़े, स्त्रियाँ, बीमार सभी इसका साधन कर सकते हैं । इसमें कोई धर्म, गृहस्थ और सांसारिक व्यवहार नहीं छुड़ाते । छुड़ाते उन बातों को हैं जो तुम्हें ईश्वर से दूर ले जाती हैं । इसमें यह बताते हैं कि अपनी रहनी-सहनी ठीक करो, अपना आचरण शुद्ध करों, धर्म पर चलो और नेक बनो । इसमें कौए भी हंस बन जाते हैं, यानी बुरे से बुरा आदमी भी अच्छा बन जाता है ।

(५) जैसा कि पहले कहा जा चुका है, इसमें देवताओं और अवतारों की पूजा नहीं करते । वे अपने लोक तक ही पहुँचा सकते हैं । भगवान् कृष्ण और भगवान् राम कुछ कलायें लेकर अवतरित हुए । सम्पूर्ण कलायें लेकर तो कोई भी अवतरित नहीं हुआ । यहाँ उस आदि शक्ति की उपासना की जाती है जो सम्पूर्ण कलाओं का स्रोत है और सबसे परे है। एक है ईश्वर और एक है परमेश्वर । ईश्वर केवल एक ब्रह्माण्ड का मालिक होता है और परमेश्वर सारे ब्रह्माण्डों का मालिक होता है। सूफ़ियों में एक को खुदा और दूसरे को खुदा-ए-अज़ीम कहते हैं ।

(६) मनुष्य सृष्टि का एक अंग है और सृष्टि के परमात्मा ने नियम बना दिये हैं। उन नियमों पर चलो। जिस समाज के तुम अंग हो और जिस धर्म (Religion) में तुम पैदा हुए हो उसके नियमों पर चलो । यहाँ यह तो सब बताया ही जाता है परन्तु यहाँ सच्ची शिक्षा इस बात की दी जाती है कि परमेश्वर से मिलकर अपनी हस्ती (आपा) को मेट दो ।

(७) और मतों का खतम (Last) यह है कि नेकी पर चलो लेकिन हमारे यहाँ यहाँ से शुरू कराते हैं ।

(८) सन्ध्या पूजा क्या है ? अपनी शक्ति को एकाग्र करना हमारी इच्छा शक्ति जन्म-जन्मान्तर से कमज़ोर होती चली आ रही है। ऐसे बहुत से लोग हैं जो यह अच्छी तरह जानते हैं एक बुरा क्या है, भला क्या है, लेकिन फिर भी बुराई कर जाते हैं। जब-जब मन बुराई की तरफ़ जाय तब अपनी इच्छा शक्ति को एकाग्र करके उसे सच्चाई पर लाओ। जब जब मन दुनिया में फंसे उसे वहाँ से निकाल कर परमात्मा के चरणों में लगाओ ।

(९) असली अभ्यास यह है कि अपने विचारों पर निगाह रखो, उन्हें बुराई से खींचकर भलाई पर लाओ।

(१०) सन्त मत में एक विशेषता यह है कि और तरीकों में तो गुरु शिष्य को अभ्यास बताकर छोड़ देते हैं मगर यहाँ यह नहीं है। सन्त मत में गुरु कृपा परछाई की तरह सदा साथ रहती है और गुरु अपनी इच्छा शक्ति से शिष्य को अभ्यास में मदद देते हैं।

मनुष्य का मन मोम की तरह है । हर छाप (Impression) लेता है। आत्मा उससे दबी हुई है। अपने असली घर को भूल गई है । परमात्मा जो उसका प्रीतम है उससे बिछुड़ गई है । मन दुनिया के भोगों में फंसा है और आत्मा उसके साथ कैद हो गयी है। अपना असली रूप सत् चित आनन्द भूल गयी है। मालिक थी, नौकर बन गई। होना तो यह चाहिये था कि मन को जो उसका नौकर है, अपने कहने में चलाये। हो गया उल्टा । हम यह जानते हुए भी कि कोई बात बुरी है, उसे छोड़ना चाहते हैं लेकिन फिर भी कर बैठते हैं। सन्त मत में एक खास चीज़ यह है कि केवल परमात्मा से मिलने का रास्ता ही नहीं बताते बल्कि गुरु अपनी शक्ति लेकर, अपना बल देकर वह बातें आपसे छुड़ाते हैं जो रास्ते में बाधक हैं। गुरु हर वक्त ईश्वर में लीन है, हर वक्त ईश्वर से शक्ति लेता है ओर उस शक्ति को आपकों दान देता है । आपने देखा होगा कि जब आप सत्संग में बैठते हैं तो मन विचार कम उठते हैं और कुछ शान्ति मिलती है। क्यों ? वह शक्ति काम कर रही है और प्रभाव डाल रही है। वह शक्ति पाकर आत्मा को अपने असली वतन (सच खण्ड) की याद आती है। अभ्यासी को अपनी ग़लतियाँ दीखने लगती हैं और वह सच्चे मन से गुरु से प्रार्थना करता है कि हे प्रभु, हमें निकालो , इस दुनिया से हमारा उद्धार करो ।

(११) जतन क्या है ? सत्संग करो, जहाँ कहीं सन्त मिलें उनकी सेवा करो। वे धन नहीं चाहते, अपने लिए कुछ नहीं चाहते, केवल उनके कहने पर चलो - यही सेंवा है । सन्तमत में जितना तप और अभ्यास है सब मन और इन्द्रियों को वश में करने का है और सिद्धान्त यह है कि आत्मा को

मन से न्याश करके अपने असली प्रीतम परमात्मा में लय कर दिया जाये जो हमारा सच्चा पिता हैं।

(१२) दुनिया में ऐसा माया जाल फंला हुआ है कि जानते हुए भी मनुष्य उसमें फंसता है। जितना वह जाल टूटता जायगा उतनी ही दुनिया दुःख का रूप नज़र आने लगेगी। यहाँ सिद्धयाँ नहीं मिलतीं, यहाँ दुनिया की वस्तुए नहीं दी जातीं, यहाँ मान आदर नहीं मिलता, उसे तो कुचला जाता है जिससे मन का मर्दन हो, दुनिया से लगाव छुड़ाया जाता है और ऐसी अनमोल वस्तु परमात्मा का प्रेम दिया जाता है उससे मिला कर एक कर देता है ।

(१३) सच पर चलने से ही इश्वर खुश होता है। सच्चाई ही ईश्वर है । इसी रास्ते पर चलने से वह मिलता है ।

(१४) आत्मा हमारे सिर की चोटी (Medulla oblongata) पर उतरी और नीचे की ओर शरीर में स्थित चक्रों (Nervous centre) में से उतरती हुई सब जगह फैल गई । उसी से हमारा जिस्म दुनिया में काम करता है । वह उसी रास्ते से ऊपर वापिस जायगी । हमारे शरीर में ईश्वर निवास करता है और शैतान भी । जो नीचे तरफ ले जाए वह शैतान है। और जो शैतान के चंगुल से हमें उपर की ओर, ईश्वर की ओर, ले जाये वह संत है।

(१५) जब तक किसी संत की मदद नहीं मिलती तब तक यह रास्ता ते नहीं होता, जब मन के चंगुल से नहीं छूटता और आत्म साक्षात्कार नहीं हो सकता । हमें जो फ़ायदा हुआ गुरु कृपा से हुआ । हमें इस बात का बड़ा गरूर दुनियावी मामलों में था कि जो भी इरादा हम करेंगे वहु पूरा होगा। दुनिया एक तरफ होती थी, हम एक तरफ और हम कामयाब (सफल) हुए । लेकित मन को वश से करने के मामले में हम नाकामयाब (असफल) रहे । अपने इरादे और बलबुते से हुम मन से नहीं जीत सके । इस मन को Backing (पीठ) पर दुर्गा माता है। वह बड़ी शक्तित शाली है ऐसी

शक्तिशाली चीज से मनुष्य को क्या मजाल है जो लड़ सके, जीतना तो दुर रहा । संत रास्ता चले होते है, उन्हे इतनी शक्ति होती है कि वे दुर्गा से आसानी से निकाल ले जाते हैं।

(१६) दुसरे तरोकों में मन को मारते हैं, हमारे यहाँ उसे मारते नहीं हैं, उसे ऊँचा रस दे देते हैं जिसे पाकर वह उससे घटिया आनन्द छोड़ देता है । जब मन को आत्मा का आनन्द मिलने लगता है तब वह इन्द्रियों के आनन्द और दुनियां की वस्तुओं के आनन्द को खुद ही छोड़ देता है क्योंकि वह उस आनन्द को फीका और झूठा समझने लगता है। मन तो बेजान है, जड़ है । उसमें आत्मा शामिल है। जब वह किसी वस्तु का रस लेना चाहता है जिसे पह पसन्द करता है तो वह आत्मा को वहाँ ले जाता मे जहाँ पदार्थ है। आत्मा की धार जब उस पर पड़ती है तब उसमे से आनन्दमिलता है। मनुष्य का चित्त कहीं दुसरी जगह हो, तवज्जह (attention) कहीं और हो तो आनन्द नहीं आता, जैसे बीमारी में खाने पीने की चीज़ों में वह आनन्द नहीं आता जो तन्दुरुस्ती में आता है। इसलिये इस दुनिया में मिलौनी का रस है जो किसी बाहरी चीज़ पर निर्भर है। निर्मल रस नहीं है जो किसी पर निर्भर न हो- (independent of anything)

(१७) तीन साधन हैं - (१) शरीर के अन्दर जो अनहद शब्द हो रहे हैं गुरुसे उनका ज्ञान प्राप्त करके शब्द की धार को पकड़ो । (२) गुरु मृति का ध्यान करो (केवल उन साधकों के लिये है जिन्हें यह ध्यान बताया जाए) (३) जो नाम गुरु ने दिया है उसका हर समय हर परिस्थिति में सुमिरन करो । ईश्वर सबका भला करे ।

अनुराग और वेराग्य दोनों से काम लो। किसी चीज़ को अच्छा समझकर क़बूल करना भअनुराग और किसी चीज़ को बुरा समभकर उसे छोड़ना वराग्य है। जो घस्तु ईश्वर की तरफ़ को ले जाती है उसे पकड़ो, वही श्रनुराग है ओर जो वस्तु ईद्वर से छुड़ाती है उसे छोड़ते चलो, यही वेराग्य है।' दोनों का लक्ष्य एक है। (परम सन्त डा० श्रीकृष्ण लाल जो महाराज)

(१५)

प्रेम और प्रीति

(बक्सर, ता० २२-१-६९)

प्रेम और प्रीति दो वस्तुएँ हैं। प्रेम (इश्क़) हमेशा एक से होगा, परन्तु प्रीति, यानी मुहब्बत सबसे होगी। माशूक़ (प्रियतम) वह है जिससे इश्क़ करते हैं! उसी का हो जाना, अपनी तमाम ख़्वाहिशात उसी पर अर्पण कर देना, उसी के रूप को देखना, उससे प्रेम करना! ख़्वाहिश सिर्फ़ यह हो कि हम उससे मिल जायें। सच्चा आशिक़ वह है जो ख़ुद को उस पर न्योछावर कर दे और बदले में कुछ न चाहें। ऐसा प्रेमी हर दुःख और मुसीबत में अपने प्रियतम (प्रेम अंग वाले जिज्ञासुओं के लिए सतगुरु) का भला चाहता है और कहता है - "आप ख़ुश रहें"। तमोगुणी और रजोगुणी मन में प्रभु का दर्शन नहीं होता। असली गुरु (परमात्मा) का दर्शन, फिर अनामी का दर्शन, संत में ही होता है। यह भी सत्य है कि जब तक उसके दर्शन नहीं होते, पूर्ण प्रेम या इश्क़ पैदा नहीं होता! प्रेम के हृदय में जागने पर गुरु का स्थूल ध्यान जाता रहता है। संतमत में सिर्फ उसी एक परमेश्वर, वाहिद की पूजा होती है जो अनामी है, अरूपा है। उसके हुक्मों पर चलना ही एक-मात्र धर्म है। फ़क़ीर कुछ नहीं चाहता - न अर्थ, न धर्म, न काम, यहाँ तक कि निर्वाण की भी चाह नहीं रखता। उसकी एकमात्र चाह यही रहती है उस मालिक प्रभु की इच्छा पूर्ण हो। भक्त स्वयँ को भगवान का सेवक मानता है।

वेदान्तियों में प्रीति पूर्ण रूप से नहीं जागती। उनका यह कहना कि - 'जगत मिथ्या और ब्रह्म सत्य है' मन व बुद्धि से कभी जानने योग्य नहीं है! यह तो साधना की एक ऊँची अवस्था है, पर यहीं अन्त हो, ऐसा नहीं है। जो कहने वाला है उसकी हस्ती को माना जाय तो यह भी मानना पड़ेगा कि जिसके बारे में वह कहता है उसकी भी हस्ती मौजूद है और दोनों के बीच का ज्ञान जो

उसके क़यास (कल्पना) में आता है वह भी तो निमित्त रूप में मौजूद है। इसलिए यह साबित होता है कि ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान तीनों ही मौजूद हैं। कबीर साहब कहते हैं - " एक कहूँ तो है नहीं ,दूजा कहूँ तो गार ! जैसा का तैसा रहे, कहें कबीर विचार। " असल तो एक ही है जो सबका होते हुए भी, ख़ुद निराधार है, जो श्रष्टि के आदि में भी था और अन्त में भी रहेगा ! उस मालिक, निराधार ईश्वर को तो सिर्फ वही जान पाता है जिस पर वह स्वयँ अपने को प्रकट करता है। उसके दिव्य अलौकिक रूप को देखने के लिए दिव्य दृष्टि की आवश्यकता है ! इन स्थूल आँखों में सामर्थ्य कहाँ जो उस दिव्य स्वरूप को देख सकें ! जिस किसी पर भी उसने अपने आप को प्रकट किया उसे पहले दिव्य दृष्टि मिली, और तब उसका अनुभव हुआ।

<u>ईश्वर प्राप्ती के साधन हैं - विवेक, वैराग्य, षट-सम्पत्ति और मुमुक्षुता</u> ! पहले इन्द्रियों को विषयों से हटाओ, मन को वासनाओं से शुद्ध करो, बुद्धि तम और रज से निकल कर सत पर आ जाय और मन शान्त हो जाय ,तभी आत्मा का प्रकाश दीखेगा। बुद्धि जब तक निर्मल होकर आत्मा की तरफ़ नहीं पलटेगी, तब तक खुला ज्ञान नहीं मिलेगा। और बिना सत ज्ञान के न तो आत्मा का अनुभव होगा, न प्रेम जागेगा और न परमात्मा मिलेगा। परमार्थ कमाने के लिये तन, मन, धन सब कुछ लगाते रहें और यह देखते रहें कि मन उनमें अटकने न पावे। हर समय अपनी निरख - परख करते रहो। मन का घाट जब तक न बदलेगा, परमार्थी चाल दुरुस्ती से नहीं बनेगी। गढ़त के लिए मौज के साथ मुआफ़िक़त करो। जो भी दुःख- तक़लीफ़ आवे उन्हें धीरज के साथ, उत्साह और उमंग के साथ बर्दाशत करो। तभी बन्धन ढ़ीला होगा ! मालिक की दया की यही पहिचान है कि उल्टी -सुल्टी हालतें आवें, और इनके आने पर मालिक का शुक्रगुज़ार हों। कभी टालने की कोशिश मत करो। अगर बर्दाश्त के बाहर जान पड़े तो उसके सामने रोओ, गिड़गिड़ाओ और बर्दाश्त करने की शक्ति माँगो। उसके हर काम हमारी भलाई के लिए होते हैं। वह वाक़ई बड़ा

दयालु हैं। निराश न हो। दिल में चाह और दर्द पैदा करो ! वह कब तुमसे दूर हैं ? वह तो हर समय तुम्हें पुकार रहा हैं। ज़रा एक बार उसकी तरफ़ मुख़ातिब होकर तो देखो ! कर्म, भाग्य, प्रारब्ध सब फँसाने वाले हैं और फुज्ला (विष्टा) हैं।

फकीरी की तीन शर्तें हैं :-- (१) इल्ल, यानि उसे कोई शारीरिक व्याधि चाहिए। (२) किल्लत – यानि उसे रूपये की कमी रहनी चाहिए (३) जिल्लत यानि लोग उसकी निंदा करें। इनसे अहंकार दबा रहता हैं और घमंड नहीं होता। जिसने अपने मन को मार लिया वह दुनियां का बादशाह हैं। इससे कठिन काम दुनियां में कोई नहीं हैं।

(परम सन्त डा० श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

(१६)

दीनता अपनाओ

(बक्सर, तारीख २१-१-६६ ई०)

हम जैसा कर्म करते हैं वैसा ही फल पाते हैं । दुनिया में आकर यहाँ का तजुर्बा हासिल करने के बाद आत्मा अपने निजधाम को वापिस जाय इसी ग़र्ज (आशय) से यहाँ भेजी गई है। इसमें Vito तथा Creation Power दोनों हैं। Vito Power यह है कि यह आत्मा परमात्मा का अंश अविनाशी और सम्पूर्ण सुखों का भण्डार है । सारे ईश्वरीय गुण इसमें निहित हैं । वह पूर्ण रूप से स्वतन्त्र है-सत्-चित् आनन्द है--जब चाहे अपनेधाम को वापस हो सकती है। ख्वाहिशात के पर्दों को भोग कर नष्ट करने के लिए इसे बार-बार जन्म मरण के चक्कर में संस्कार-वश आना पड़ता है । जैसी- जैसी वासनायें रहती हैं - जहाँ वे पूरी हो सकें--उन्हीं योनियों में यह भटकती है। मनुष्य योनि भोग के साथ कर्म योनि भी है। एक तो यह पुराने संस्कारों को भोगती है, दूसरी तरफ़ नये संस्कार फिर से पैदा कर सकती है । अगर ये संस्कार दुनियावी हुए तो रास्ता और अधिक लम्बा हो जाता है।

सन्त लोग सदा परमात्मा को मौज में शामिल रहते हैं कृष्ण भगवान् कहते हैं-- हे अर्जुन ! तू मुझे बहुत प्यारा है । तू सबका आसरा छोड़कर मेरी शरण में आ जा मैं वायदा करता हूं कि तुझे भवसागर से पार उतार दूंगा ।" भगवान् श्रीकृष्ण को योगीराज कहा गया है । इनके जीवन का आदर्श सर्वसाधारण की समझ से बाहर था । एक बार ऐसा हुआ कि बृज की गोपियाँ दुर्वासा ऋषि का दर्शन करना चाहती थीं । दुर्वासा उन दिनों यमुना के दूसरी तरफ ठहरे हुए थे। यमुना लबालब भरी हुई थी । गोपियों के पूछने पर कृष्ण ने कहा 'जाओ , यमुना से कह दो कि अगर कृष्ण योगी है तो तुम हमें रास्ता दे दो।" गोपियों के आश्चर्य का ठिकाना न था । जो कृष्ण गोपियों के साथ रास करता रहता था वह भला योगी हो सकता है। पर श्रीकृष्ण का अविश्वास भी कैसे किया जाय । खैर,

तरह तरह के व्यंजन दुर्वासा के लिए भेंट लेकर गोपियाँ यमुना के किनारे पहुँची और कृष्ण का संदेश सुनाया । यमुना ने झट उन्हें रास्ता दे दिया और वे उस पार चली गई । दुर्वासा ऋषि के पास पहुँची और थालियाँ भेंट में सामने रखीं। दुर्वासा एक-एक करके सारे पकवान खा गये । कुछ देर बाद गोपियों ने लौटने की इच्छा व्यक्त की । उनके पूछने पर दुर्वासा ने कहा--"जाओ, यमुना से कह दो, अगर दुर्वासा सचमुच दुर्वा ही खाता है तो हमें रास्ता दो ।" गोपियों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा । जो थाल के थाल पकवान खा गया, डकार तक न ली, कहता है दुर्वा (दूब घास) खाता है। परन्तु उनके लिए और चारा ही क्या था ? विवश होकर वैसा ही करना पड़ा । उस बार भी यमुना ने उन्हें रास्ता दिया और वे पार चली ह्मराई । इस रहस्य को सन्त लोग जानते हैं और जान भी वे ही सकते हैं। उनका जीवन रहस्यमय होता है । जो उनके घाट चले वही उन्हें पहिंचान सकता है। यह कथनी और करनी के परे का बिषय है ।

संतो का उसूल (सिद्धान्त) है- "ईश्वर है और अवश्य है, सृष्टि के कानून अटल हैं, वह सर्व-समर्थ, सर्व शक्तिमान व सर्व ज्ञाता सत चित्त आनन्द है, वह जो कुछ करता है हमारी भलाई के लिए करता है, हमारी शुरुआत और आखिर (आदि और अंत उसी में है, वह सबके अन्दर के अंतर में बैठा हुआ सबका सच्चा बाप है । जीव जब तक संसारी वासनाओं में फँसा हुआ है ऊपर नहीं उठ सकता । जीवों के उद्धार के लिए सन्त जन यहाँ पधारते हैं और प्रेम के Medium (माध्यम) से जीवों को समझाते हैं। जो उन पर विश्वास ले आते हैं तथा उनके बताये हुए मार्ग पर चलते हैं, अवश्य भवसागर पार कर जाते हैं। कभी-कभी सन्त जन अपने प्रेमियों के साथ जिन्हें यहाँ से निकालना उन्हें मंजूर होता है-जब वे इधर-उधर होने लगते हैं. जबरदस्ती भी करते हैं । लेकिन यह सबके साथ नहीं किया जाता और न ही सब इसके अधिकारी होते हैं । इतना जरूर है कि सन्त-जन जब गढ़त करना शुरू करते हैं तो वह हमें जबरदस्ती सी लगती है। पर यह हमारी भूल है। बिना

गढ़त हुए आत्मा कभी भी मन से न्यारी नहीं हो सकती और गढ़त भी ज़रूर होगी । परमात्मा किसी के साथ ज़बर दस्ती नहीं करता । अलबत्ता, जब हम में इच्छा उससे मिलने की उत्पन्न होती हैं तो वह कोई न कोई बन्दोबस्त हमारे लिए कर देता हैं। जब हम उससे मिलने के लिए एक पग बढ़ाते हैं तो वह सौ क़दम हमारी तरफ आता हैं । जो वास्तव में ईश्वर प्रम का सच्चा ग्राहक हैं वह धोखेबाजों के चक्कर में नहीं फंस सकता । देव योग से अगर कभी किसी कुचक्र में पड़ भी जाय, और अगर चाह सच्ची हैं तो जल्दी और आसानी से निकल भी जायगा । सच्ची चाह उसे वहाँ अटकने नहीं देगी । तुलसीदास के दब्दों में--"विधिबश सुजन कुसंगत परहों । फनि मनि सम निज गुण अनुसरहीं ।" अटकना तो दरकिनार रहा, वहाँ भी अपनी सज्जनता छोड़ आते हैं ।

अभी कलियुग हैं। मन की शक्तियाँ थक गयी हैं । हम ईश्वर को आमतौर पर इसलिए पूजते हैं कि हमारी इच्छायें पूरी हों । मेरे पास जितनी चिट्ठियाँ आती हैं उसमें से ९८ प्रतिशत दुनियादारी से भरी रहती हैं - कोई नौकरी चाहता हैं, कोई सन्तान चाहता हैं कोई किसी बीमारी से छूटने के लिए दुआ करने को कहता हैं, कोई कुछ चाहता हैं तो कोई कुछ । मुझे दुख होता हैं । सभी, नाम के परमार्थी हैं । सन्तों का परमार्थ यह हैं कि निर्वाह भर के लिये संसार से सम्बन्ध रखे बाक़ी तोड़ दे । इन्सान की इच्छा शक्ति कमजोर हो गयी हैं । ऐसे बहुत कम लोग हैं जो ईश्वर प्राप्ति के लिए आते हैं , दुःखऔर मुसीबत परमात्मा की नियामतें हैं, इनके होते परमात्मा की याद खूब आती हैं । जब तक परमात्मा की याद बनी रहे उतनी देर का समय सार्थक, बाकी निरर्थक हैं । सुख में हम परमात्मा को भूल जाते हैं । अतः जिसे हम सुख माने हुए बैठ हैं दरअसल यही दुःख हैं क्योंकि यह हमें हर तरफ़ से मारता हैं - न यहाँ का रहने देता हैं न वहाँ का मार्ग हमें देता हैं । मन व माया के भोगों में हम यह दुर्गति उठाते रहते हैं । इस दुर्गति में पड़ने व पड़ रहने से जो भींचा भींची की जाती हैं वह आत्मा को इनसे निकालने के लिये किया जाता हैं । जब तक यह न हो आत्मा कभी

निकल नहीं सकती । फ़र्ज़ करो (मान लो) नांवदान में कुड़ा भरा हुआ है । पानी तो ऊपर ऊपर बह जाता है ग़लीज (गन्दगी, कीचड़) वहीं जम जाता है। सवाल यह है कि वह ग़लीज़ कईसे साफ़ हो ? उसके लिए ज़रूरी है कि पानी की धार ज़ोर क़र दी जाय । ऐसा करने से वह ग़लीज़ दूर होगी और नाबदान साफ़ होगा। ऐसे ही हमारे दिल में वासना रूपी गलीज़ दबा पड़ा है। फैज़ (कृपा) की धार जब तक तेज़ न होगी वे कभी निकल नहीं सकतीं । पुरानी आदतें छोड़ने में भी हमे कष्ट होता है। । सत्संग में फैज़ की धार से सिर्फ़ नये संस्कार ही नही धोये जाते बल्कि जो संचित व प्रारब्ध क्रमानुसार हैं उनकी भी सफाई होती हजी। चूंकि इनकी जड़ हमारे अन्दर बहुत दूर तक चली गयी है - जब वे खिंची जाती हैं तो हमें उसी हिसाब से तक़लीफ़ होती है। बेचैन हो उठते हैं। यहाँ पर बहुत से सत्संगी टिक नहीं पाते, भाग जाते हैं। **मन की गढ़त है क्या ? साँसारिक बन्धन और वासनायें टूटें, बस और कुछ नहीं ।**

'शुन्य' के स्थान पर 'ॐ' की आवाज हर समय आपको बुला रही है । यही वह डोर है जिसे पकड़ कर अभ्यासी ईश्वर तक पहुँचता है- यह सीधी सड़क है। हम उसे पकड़ नहीं पाते । जब तक मन वासनाओं और इच्छाओं से खाली नहीं होगा, हमें सन्त की परख नहीं आयेगी । इच्छाओं और वासनाओ का पर्दा उस आवाज़ को घेरे हुए है । यदा-कदा गुरु के सत्संग से यह पर्दा थोड़ी देर के लिए हट जाता है तो हम आनन्द का अनुभव करते हैं । ज्यों ही वह पर्दा फिर से पड़ा, आनन्द जाता रहता है । वह तो गुरु कृपा थी जिससे वह Temporary (अस्थायी) तौर पर हट गया था । निज कृपा यही है कि वासनाओ की डोर काट दें ताकि वह पर्दा सदा के लिए दूर हो जाय और हम उस आनन्द के भण्डार में समा जायें । आत्मा सचखण्ड से निकल कर मस्तिष्क में आकर आज्ञा चक्र पर रुकी, फिर निचले चक्रों में फैल गई । इसका पता उसी शब्द से मिलता है। सुरत को उस शब्द में मिलाना 'सुरत-शब्द-योग' कहलाता है । यह सन्तों का मार्ग है। दीक्षा देते वक्त गुरु सुरत को

ऊपर खैंच कर उस आदि शक्ति जो ब्रह्माण्ड से परे है उससे मिला देते हैं और उसका approval होने पर दर्शन मिलता है । दर्शन अन्तर में अन्तर की आँख से होता है । देहधारी गुरु का दर्शन त्रिकुटी में होता है । छठे चक्र में पूर्णमासी के चाँद के प्रकाश के रूप में दीखता है । इन सब स्थानों पर और ऊंचे मुकामों पर वहीं आत्मा पहूँचती है जो बंकनाल से गुज़र कर आती है । बंकनाल से निकलना आसान नहीं है, यह अति सूक्ष्म और संकीर्ण मार्ग है । काम, क्रोध, लोभ, मोह तृष्णा और अहंकार से पार हुए बगैर उससे निकलना मुश्किल है ।

ईद क्या है, सब मुसलमान नहीं जानते । चालीस दिनों तक उपवास करने के पश्चात चाँद का दर्शन आज्ञा चक्र में प्रकाश रूप में होता है । उप =समीप, वास=रहना । कितनी कठिन रियाजत है ? वही इसकी असलियत जान सकता है जो इस रास्ते पर चल चुका होता है। सचखण्ड में पूर्ण ईश्वर का दर्शन होता है। दयाल देशाधिपति की करते हैं। वह चौथे देश में रहता है। काल पुरुष का सबसे बड़ा अवतार कृष्ण रूप सें हुआ था । ब्रह्माण्ड की रचना का मालिक काल पुरुष है। काल पुरुष ब्रह्माण्ड तक ही पहुँचा सकते हैं। जो आत्मा ब्रह्माण्ड तक ही चढ़कर रह जाती है, वह पुण्य के क्षीण होने पर पुनः वापस आती है । उस अवस्था में अगर तमोगुणी वृत्ति प्रधान होती है तो वासनाओं को भोगने के लिए नीचे की योनियों में जाता है, रजोगुणी वृत्ति प्रधान रहने पर इन्सान के चोले में आता है तथा सतोणुणी वृत्ति प्रधात होने से अवतार कहलाता है। वह दयाल पुरुष का अंश होता है। राम, कृष्ण आादिकाल पुरुष हैं। चौथे खण्ड का मालिक पारब्रह्म है, बहाँ पहुंचकर आत्मा वापिस नहीं आतो। कर्मफल त्रिकुटी में समाप्त हो जाते हैं। वहाँ से निष्कर्म हो जाता है। यहाँ आकर मौज शामिल होती है। चूंकि यहाँ कोई ख्वाहिश शेष नहीं रहती, संस्कार बनता बन्द हो जाते हैं, राजी-ब-रज़ा (यथा लाभ सन्तोष) आ जाती है । इसके बाद दो-तीन जन्मों में संचित कर्मों को भी भोगकर आत्मा निज धाम में लौट जाती है, फिर वहाँसे दुनियां में नही लौटती । ऐसी आत्मायें

निज इच्छा से आती और चली जाती हैं। इन पर कोई बंधन या प्रतिबन्ध नहीं होता । किंचित कोई वासना रहती भी है तो वह छोटी-छोटी घटनाओं के सामने आते ही एकदम बैराग पैदा कर देती है, उसे निज घर की याद आ जाती है और थोड़े प्रयास से वह निकल जाती है, जैसे सिद्धार्थ हुए, जो बाद में गौतमबुद्ध के नाम से विख्यात हुए ।

प्रातः देखा गया है कि जो भक्त ईश्वर पर पूरी तरह आश्रित रहता है उसकी सारी ज़रूरतें पूरी होती रहती हैं। अब्बल तो मुमुक्षता के आने मात्र से ही इच्छाओं की जड़ कट जाती है, और अगर कुछ करता भी है तो वह सब कुछ अपने ईष्ट को अर्पण कर फलाफल की भावना से रहित हो जाता है। साधकों को चाहिए कि हर समय चिन्तन किया करें, अपनी भुलों पर पश्चाताप करें, उससे दुआ करते रहें और दीन भाव अपनायें । मदद अवश्य मिलेगी । हम चाहे उसे भले ही भूल जायें पर वह हमें कदापि नहीं भूलता । लड़का कितना भी नालायक हो, परन्तु बाप के लिए लड़का ही है । बाप हर समय अपने बेटे की प्रतीक्षा करता रहता है और चाहता है गोद में चिपटा ले। और हम हैं कि उसकी याद तक नहीं करते । परमात्मा के पास सारी चीजें हैं-यह सृष्टि ही उसकी लीला विलास है। उसके पास सिर्फ दीनता नहीं है । तुम दीन बनकर उसके पास जाओ । वह तुम्हें अवश्य अपनी गोद में उठा लेगा । दीन बनने के लिए अपने आपको मेटना पड़ेगा-यह जीवन का सौदा है। इसके लिए जीवन भर संघर्ष करना पड़े तो हिचको मत । मौक़े को गनीमत जानकर मानव जीवन को सफल करो, वर्ना यह समय फिर हाथ न आयेगा ।

इन्सान की जिन्दगी का आदर्श यह है कि अपने आपको पहचाने कि "मैं क्या हूँ ।" ईश्वर को पहचाने और उसमें अपने व्यक्तित्व को लय कर दे । जो इस आदर्श का रास्ता दिखाये वही सच्चा मजहब है । जिसने इस आदर्श की प्राप्ति कर ली है वही सच्चा गुरु है । जो इस आदर्श की प्राप्ति करना चाहता है वही सच्चा भक्त है । जब ऐसा गुरु हो और ऐसा शिष्प हो तभी सच्चे लक्ष्य की प्राप्ति सम्भव है।

(परमसन्त डा० श्रीकृष्णलाल जी महाराज)

(१७)

ईश्वर बनना नहीं है, उसे पाना है

मज़हब (परमार्थ) पर चलने के लिए दो रास्ते हैं, एक मन का दूसरा बुद्धि का एक प्रेम का दूसरा ज्ञान का । जो मन पर चलते हैं वे ज़्यादातर विद्वान कम होते हैं । उनका शुरू से ही विश्वास गुरु में अधिक होता है । जो गुरु ने बता दिया उसी पर अन्ध-विश्वास कर लिया और उसी रास्ते चल पड़े । दूसरे, बुद्धि को काम में लाते हैं । जो कुछ आचार्य ने बताया उस पर खुब सोच विचार करते हैं, पहले देख लेते हैं कि वे उस रास्ते चल भी सकते हैं या नहीं । बिना सोचे समझे वे कुछ भी करने को तैयार नहीं होते । अगर गुरु कृपा से उनमें थोड़ा बहुत भी गुरु के प्रति प्रेम पैदा हो जाय तो वे गुरु की बात को तजर्बा करके आहिस्ता-आहिस्ता यकीन (विश्वास) कर लेते हैं और जब एक बार यक़ीन हो जाता है तब फिर रास्ते से अलग नहीं होते । लेकिन अगर मुहब्बत (प्रेम) में कमी है तो बुद्धि के भ्रम में पड़कर रास्ते से बेरास्ते हो जाते हैं, उन्हें अपनी बुराइयाँ नजर नहीं आतीं और उनसे छुटकारा नहीं हो पाता । यदि बुराइयों को ठीक करने का इशारा (संकेत) किया जाता है तो तर्क बुद्धि उसे चलने नहीं देती । इसके विपरीत प्रेमी भक्त बिना बुद्धि के दखल में लाये रास्ते पर चलता चला जाता है । उसे प्रेम में अपनी बुराइयां नजर नहीं आती परन्तु सतगुरु जब किसी बुराई की तरफ इशारा करते है तो वह उसे तुरन्त दूर करने में लग जाता है और जब वह ऐसा पुरुषार्थ करता है तो गुरुकृपा की लहर उमड़ती है और वह बुराई शीघ्र दूर हो जाती है ।

सन्त मत प्रेम का मत है। इसमें प्रेम और विश्वास दोनों बहुत ज़रूरी हैं। न तो अन्ध विश्वास की ज़रूरत है और न बुद्धि के तर्क की । जो गुरु बतायें उस पर अमल करना प्रेम और विश्वास है लेकिन समझकर अमल न करे तो यह समझना नहीं हुआ । समझना बुद्धि का काम है और जो बुद्धि से समझकर चलता है वही मज़हब (परमार्थ, धर्म) है । जब तक समझकर आत्मा से

उसे क़बूल (अपनाना) न कर ले तब तक क़बूल करना भी क्या हुआ ? देखा गया है कि जो समझकर क़बूल कर लेते हैं वे प्रेमवश (अन्ध विश्वास से) क़बूल करके चलने वालों से अच्छे होते हैं । लेकिन एक बात यह भी है कि निरे बुद्धिवादी लोग समझकर भी इस राह पर चलते कम हैं इसलिये प्रेम और बुद्धि दोनों ही इस रास्ते के लिए ज़रूरी हैं । प्रेम मुख्य है और बुद्धि गौण ।

किसी बात का तजुर्बा करके उसे जान लेने में और उसी को किताब में पढ़ लेने में--इन दोनों में बहुत फ़र्क होता है । बुद्धिवादी पहले किताबों की तरफ़ दौड़ते हैं और उन्हें झुठा अभिमान अपनी (पुस्तक) विद्या का हो जाता है जिसके कारण वे गुरु की बात को क़बूल नहीं करते और अगर कर भी लेते हैं तो उसे समझते नहीं । इसका नतीजा यह होता है कि अभ्यास करते-करते जब वह चीज़ खुलती है तो वे हैरत (अचम्भे) में रह जाते हैं "अल्लाह अल्लाह, राम राम" या कुछ ऐसा ही चिल्लाने लग जाते हैं और पागल या मजज़ूब (अवधूत) हो जाते हैं। उस स्थान पर बुद्धि काम नहीं करती क्योंकि वह नीचे रह जाती है मगर जो प्रेमी अन्धविश्वासी होते हैं अगर उनके सम्मुख कोई ऐसी चीज़ अभ्यास में खुलती है तो वे उसे गुरु कृपा से आई हुई समझते हैं, अपना आपा नहीं खो बठते और उसे जज्ब (शोषित) कर लेते हैं ।

हमारा मजहब तो प्यार का है। जो ईश्वर से प्यार करते हैं वही हमारे हैं चाहे वे कोई क्यों न हों

हमारे लिये तो जो गुरु के श्रीमुख से निकल आया वही वेद है । मैंने न वेद पढ़ा न कुरान, पर गुरु की वाणी को ही वेद समझा ।

शुरू में किसी भी अभ्यासी को गैर सत्संग में नहीं जाना चाहिये पर जब दृढ़ता आ जाय तब कोई हर्ज नहीं है। मज़हब में कहीं भी भेदभाव नहीं है, कोई भी फ़र्क नहीं है, सबका एक ही उद्देश्य है, एक ही लक्ष्य है। आगे चलकर द्वैत और अद्वैत में थोड़ा फ़र्क होता है, हक़ीकत सब की एक है । जब

तक साधक मन के स्थान पर है तब तक वह किसी एक philosophy (दर्शन) को ले ले, चाहे वह पातंजलि का हो, भगवान् शंकराचार्य का या किसी अन्य सन्त महापुरुष का । जब आत्मा का अनुभव हो जाय तब इस कैद (प्रतिबन्ध) को तोड़ दे। हमारे गुरुदेव (परमसन्त महात्मा रामचन्द्र जी महाराज) कहते थे कि लोग नफ़रत इसलिये करते हैं कि एक दूसरे की ? philosophy (दर्शन शास्त्रों) को पढ़ते नहीं उन्होंने हिन्दू फिलोसफी का बहुत अध्ययन किया था। 'राधाकृष्ण या 'सीताराम' इसमें फ़र्क क्या है ? राधा माने प्रकृति और कृष्ण माने स्वामी, अर्थात् विश्व का रचने वाला । अतः यह सभी, शब्दों के जाल हैं। फ़र्क कहाँ है इसमें और राधा स्वामी में ? वे कहते हैं हमारे गुरु ने यह मत इजाद किया | यह नहीं । ईसा के ६०० वर्ष बाद रसूल मक़बूल हज़रत मुहम्मद साहब ने किया । भजन, सुमिरन, ध्यान वह तब भी था लेकिन फ़र्क इतना था कि थोड़ से लोगों को सिखाया जाता था पर आज के दिन यह आराम है। हमने तो यह सोचा है कि जहाँ तक हो सके इसकी तरक्की (प्रगति) करें और सभी बन्धनों को तोड़ दें । अगर हम ईश्वर की पूजा किसी Symbol (प्रतीक) को मानकर करते हैं तो वह बुतपरस्ती (मूर्ति पूजा) थोड़े ही है। वह तो ईश्वर-परस्ती है ।

जो लोग कहते हैं कि हिन्दू काफ़िर हैं, यह गलत है। सच पूछिए तो उन्होंने philosophy (दर्शन शास्त्रों) का अध्ययन ही नहीं किया है । लालाजी (समर्थ गुरु रामचन्द्र जि महाराज, फतेहगढ़ी) का रास्ता प्रेम का था, पर महाराज जी (परम संत श्री अक्षय कुमार जी बंधोपाध्याय, बैनर्जी साहब, गोरखपुरी) का रास्ता त्याग का था, लेकिन फिर भी दोनों में अपूर्व सामंजस्य था । बिना प्रेम के त्याग नहीं होता और त्याग के बिना प्रेम कहाँ सम्भव है ?

जिन चीजों से अपने और गुरु के बीच फर्क आवे उन्हें छोड़ दो, ज्ञान की तलवार से काट दो । हम तो प्रेम के मार्ग पर चलने वाले हैं , ईश्वर तक पहुंचना हमारा ideal (ध्येय) है । हमारा

प्रियतम ईश्वर हैं, उसे पाने के लिए जो कुछ करना पड़े , कबूल है । चाहे भंगी बना दो , चाहे मुस्लमान या कुछ और पर हमे हमारे प्रीतम ईश्वर से मिला दो । जो हमारे (अध्यात्मिक वंश के) पूर्वज हैं जिनकी कृपा के बूते पर हम रास्ते पर चल रहे हैं, वे चाहे हिन्दू हैं या मुसलमान, इस बात को मन में मत लाओ ।

जहाँ दुनियावी मामला आये वहाँ हमेशा समाज से डर कर रहना चाहिए लेकिन परमार्थ के मामले में जरुरत पड़ने पर समाज के सब बंधन तोड़ देने चाहिए । मीराबाई को क्यों भूलते हो ?

रघुनन्दन आगे नाचूंगी ।
नाच नाच रघुनाथ रिझाऊं प्रेमीजन को जाचुंगी ॥
प्रेम प्रीटी के बाँध घुंघरू, सुरत कि कछनी काछुंगी ॥
लोक लाज कुल की मर्यादा, या में एक ना राखुंगी ॥

बुराई को छोडकर अच्छाई का रास्ता पकड़ो और उसी पर चलने की कोशिश करो, जब तक कि सत पर न आ जाओ , जब तक कि अच्छाई तुम्हारा स्वभाव न बन जाए । जब तक सत पर नहीं आओगे तब तक शरीयत (कर्म काण्ड) में बरतना ही पड़ेगा । सत पर आ जाने पर मन के बंधन टूट जायेंगे ।

परमार्थ के मामले में किसी की परवाह मत करो । घर वाले कितने दिन साथ देंगे ? तब मन पर काबू भी होना चाहिए । उसकी कैद से आजाद हो जाओ । जब दुनिया की हरेक चीज़ एक दिन हमे छोडनी ही है तो पहले से ही क्यों न छोड़ते चले ताकि मरते वक्त कोई ख्वाहिश न रह जाय । जो सांधारिक वैभव से उपराम हो जाते हैं उन्हें गुरुदेब लेने आते हैं मगर जो संसार में फँसे हैं उन्हें यम लेने आते हैं । अक्लमन्द (बुद्धिमान) वे हैं जो इन्हें छोड़ देते हैं ।

कम तो एक ही रहा पर निगाह बदल दो । सबकी सेवा करो पर जो कुछ (उसका फल) होता है उसे ईश्वर की कृपा समझो । सब कुछ वही है पर निगाह बदलने से एक बायस (निमित्त) हो जाता है । मोक्ष हो जाती है । अपने रूप को पहचान कर अपने असली बाप परमेश्वर को पहचानों और उसी के हो रहो | ईश्वर बनना नहीं है, उसे पाना है ।

गजल

खैंची है तसब्बुर में तस्वीरे हमागोशी ।

अब होश न आने दे मुझको मेरी बहोशी ॥

मैं साजे -हकीकत हूं दम साज् हकीकत हूं ।

खामोशी है गोयायी, गोयायी है खामोशी ॥

इस दर्दे मोहब्बत का इजहार है नामुमकिन ।

टूटा है न टूटेगा कुफ्ले दरे ख़ामोशी ॥

हां हां मेरी इसियां का पर्दा नहीं खुलने का ।

हां हां तेरी रहमत का है काम खतापोशी ॥

इस परदे में पोशीदा लैलाये दो-आलम है ।

बे वजह नहीं 'बेदम' काबे की सियाहपोशी ॥

(१८)

प्रार्थना

(मार्च १९६४)

अक्सर लोग प्रभु को पाने के लिए प्रार्थना करते हैं। केवल प्रार्थना करके ही वे अपना कर्त्तव्य पूरा कर लेते हैं, लेकिन वास्तव में प्रार्थना क्या है, वे यह नहीं समझते, क्या ईश्वर से प्रार्थना करके अपना कर्त्तव्य पूरा कर लेना ही सच्ची प्रार्थना है ? यह बात नहीं है। प्रार्थना तन्मयता से हो, लगन से हो और उसमें व्याकुलता होनी चाहिए। प्रार्थना शब्दों से तो सभी करते हैं, लेकिन जो प्रार्थना आत्मा से की जाती है, वह सीधी ईश्वर के दरबार में पहुँचती है। जो प्रार्थना मन से की जाती है उसकी पहुँच प्रजापति तक है क्योंकि उसमें साँसारिक चाह होती है। प्रार्थना में किसी साँसारिक चीज़ की चाह न हो। केवल उस परमात्मा का प्रेम माँगिये। जब-जब परेशानी में हों, प्रभु को दिल से पुकारिये, उनके लिए रोइये। जितना ही आप उनकी ओर बढ़ेंगे उतनी ही मदद अवश्य मिलेगी। जितने ही अपने self confidence (आत्म विश्वास, अपना बलबूता) पर निर्भर रहेंगे उतनी ही परेशानी और बढ़ेगी और दुःख होगा। जब आप उस परमात्मा पर निर्भर रहेंगे, सब कुछ उस पर छोड़ देंगे तो आप देखेंगे कि आपको सुख और शान्ति का आभास होने लगेगा। दरअसल अगर आपको कोई प्रभु का प्यारा, वक्त का पूरा सन्त मिल गया है और आपने सच्चे हृदय से उसकी शरण ग्रहण कर ली है तो उसके प्रति समर्पण से, उसकी कृपा से सब कुछ हो जाता है। न ईश्वर रहता है, न गुरु रहता है और न आप स्वयँ रहते हैं। सब मिल कर 'एक' हो जाते हैं। साध्य, साधक और साधन - सब एक हो जाते हैं। भिन्नता का आभास नहीं रह जाता क्योंकि 'एक' हो जाने पर 'अनेकता' की भावना नहीं रहती। यही परम लक्ष्य है। परन्तु पूर्ण सन्त का मिलना बहुत मुश्किल है। यदि आपके अन्तर में गहरी उत्कण्ठा ईश्वर से मिलने की पैदा हो गयी है तो समझ लीजिये कि

बीज पड़ गया। आपको कभी न कभी सन्त मिल जायेंगे जो गुरु-रूप में आकर आपका पथ-प्रदर्शन करेंगे।

'मुक्ति' का मतलब क्या है ? मुक्ति का मतलब है कि हमारी आत्मा जो प्रपंच में फँसी है, उसे सतगुरु द्वारा बताये हुए अभ्यास से 'तम' से 'रज' पर, 'रज' से 'सत' पर लाना है। हमारी आत्मा उस अनन्त के स्थान की बासी है जो वर्णन में नहीं आ सकता। वहाँ से उतरकर यह सँसार में मौजूदा (वर्तमान) हालत में आ गयी है। उसकी चाह यही रहती है कि वह अपने असली वतन (निज घर) की ओर लौट जाये, और अपने प्रीतम के चरणों में जा मिले। वह आनन्द ही आनन्द चाहती है। यह दुनियाँ तो दुःखों का घर है। यहाँ वह आनन्द कहाँ जिसको वह चाहती है ? इसके लिए उसको यहाँ के पदार्थों से निकालकर अभ्यास द्वारा दयाल देश में ले जाओ। जब आत्मा ऊपर से (दयाल देश से) नीचे उतरी तब इस पिण्ड शरीर में जगह-जगह ठहरी और नीचे उतरते-उतरते उसका बहाव सँसार और उसके पदार्थों में को हो गया। मन के चक्कर में पड़कर जैसे वह मन चाहता रहा वैसा करती रही और अब इस जगत के सुख-दुःख भोग रही है। यही बन्धन है। इस बन्धन से छूट जाना और अपने निज घर यानी दयाल देश में वापिस पहुँच जाना 'मोक्ष' या 'मुक्ति' है।

सबसे ऊँचा दयाल देश है। यही आत्मा का देश है। यहाँ पर आनन्द ही आनन्द है। हमें यहीं पहुँचना है। यही सन्तों का देश है। जीवों का उद्धार करने के लिए इसी देश से उतर कर सन्त नर-शरीर धारण करके गुरु रूप में जीवों को चेताते हैं और उनका उद्धार करते हैं । दूसरी तरह के गुरु और भी होते हैं। जो व्यक्ति सन्तों की सौहबत में रहकर उन्नति करते हैं और दयाल देश तक पहुँच जाते हैं, वे भी गुरु हैं। इन दोनों प्रकार के गुरुओं में अन्तर यह है कि जो सन्त दयाल देश से आते हैं वे कुछ साधन नहीं करते क्योंकि उन्हें उसकी आवश्यकता नहीं होती और यदि वे कुछ साधन भी

करते हैं तो जीवों के कल्याण के लिए करते हैं, इसलिए करते हैं कि उनके भक्त उनका अनुकरण करें। वे ऊपर दयाल देश से उतरकर जीवों का उद्धार करके फिर वापिस चले जाते हैं।

दूसरे प्रकार के गुरु नीचे से ऊपर की ओर चलते हैं यानी सन्त की सौहबत में रहकर अभ्यास व गुरु-कृपा द्वारा अपना उद्धार कर लेते हैं और दयाल देश पहुँच जाते हैं। ऐसे लोग पहले 'साध' कहलाते हैं और उन्हें सन्त की संगति में रहकर अभ्यास अपने उद्धार के लिए करना पड़ता है। ऊपर से सन्त हज़ार बारह- सौ वर्ष में एक बार आते हैं। अगर सौभाग्य से मिल जाएँ तो उनकी शरण ग्रहण करें और लग लिपट कर अपना काम बना लें। यदि सन्त से मेला न हो सके तो किसी ऐसे साध से जो सन्त की सौहबत में रह चुका हो, मिलकर उसकी संगत ग्रहण करे और लाभ उठाये। यह दूसरे प्रकार के गुरु 'साध गुरु' कहलाते हैं।

'अभ्यासी' वे हैं जो परिश्रम करके 'पिण्ड' से निकलकर 'ब्रह्माण्ड' में आ गए हैं और ऊपर की चढ़ाई का अभ्यास कर रहे हैं। हमारे यहाँ भले या शुभ काम वह हैं जो अभ्यासी को काम क्रोधादिक विचारों से निकालकर 'सत' की ओर ले जायें। ऐसे काम जिनसे किसी का उपकार होता हो वे भी शुभ कर्म हैं। वे कर्म जो ईश्वर से विमुख करें, दुनियाँ में फँसायें, जिनसे किसी का अहित होता हो, बुरे कर्म या अशुभ कर्म कहलाते हैं।

सन्त मत केवल एक ईश्वर में विश्वास करता है। स्थूल रूप में वह 'गुरु' है। सूक्ष्म रूप में वह 'शब्द' है, 'प्रकाश' है, 'प्रेम' है 'आनन्द' है। जिनकी वृत्ति बाहर की ओर है वे उसे अन्तर्मुखी बनायें। सत्गुरु से उसकी युक्ति जानकर आन्तरिक ध्यान करने का अभ्यास करें। ईश्वर सभी जगह मौजूद है। इधर-उधर भटक कर समय नष्ट न करें। उसे अपने अन्तःकरण में देखें और इस काम में ऐसे महापुरुष का सहारा लें जिसने आत्मसाक्षात्कार कर लिया है। तभी फ़ायदा होगा। बिना गुरु के फ़ायदा नहीं होगा। गुरु की मदद से हम अपनी सुरत (attention) को अन्तःकरण पर केन्द्रित

कर सकेंगे। जलता हुआ दीपक ही बुझे हुए दीपक को जला सकता है। इसलिए सन्तों ने बार-बार कहा है कि बिना आत्मदर्शी (गुरु) का सहारा लिए साधारण जिज्ञासु अपने अन्तःकरण के पर्दों को साफ़ नहीं कर सकता। जब तक पर्दे साफ़ न हों, आवरण न हटें, तब तक प्रीतम के दर्शन कैसे हो सकते हैं ? जब तक आप इस दुनियाँ से बेज़ार (दुःखी) न होंगे तब तक ईश्वर प्रेम (जो आप में प्राकृतिक रूप से मौजूद है लेकिन आवरणों से दबा हुआ है) जागेगा नहीं। यदि कोई वास्तव में पूर्ण सन्त है तो उसकी सौहबत से आवरण साफ़ होने लगते हैं और ईश्वर प्रेम जागने लगता है। ऐसे सन्त के पास बैठने से, बिना कुछ बोले, बिना कुछ पूछे, आनन्द का, शीतलता का आभास होने लगता है परन्तु यह स्थायी नहीं रहता। यदि आप लगातार उनके पास आते-जाते रहें, उनका सत्संग करते रहें, तो क्रमशः दुनिया से बेज़ारी, उपरामता होने लगती है। यद्यपि पहले तो यह भी अस्थायी (temporary) होती है परन्तु सत्संग और अभ्यास में इससे दृढ़ता आने लगती है।

हमारी आत्मा ईश्वर का अंश है, ईश्वर की बेटी है। हमारा मन शैतान की औलाद है, शैतान का बेटा है। यदि हम गुरु के आश्रित नहीं रहेंगे तो शैतान हम पर हावी हो जायेगा, हमें दबोच लेगा, और हमारी आत्मा का हनन कर लेगा। सत्गुरु सर्वविकार रहित होते हैं, वह काम-क्रोधादिक विकारों पर विजय पाकर उनके भँवरजाल से ऊपर निकल चुके होते हैं, रास्ता उनका जाना हुआ होता है। अतः उनकी आज्ञानुसार चलना और उनके अनुकूल अपना आचरण बनाना चाहिए। यदि कोई ऐसा करेगा तो निःसन्देह वह काम-क्रोधादिक विकारों के भँवरजाल से निकलने में सफल हो सकेगा और शैतान उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा। इसलिए सच्चे गुरु की खोज करो।

हमारे सिलसिले में सबकी इज़्ज़त करते हैं, वेद आदि धर्मग्रंथों को सही मानते हैं, पर ऐसे महापुरुष (गुरु) का जिसका सम्बन्ध धुर-धाम से है, सबसे अधिक आदर करते हैं। गुरु में सबसे अधिक विश्वास रखते हैं। जो अभ्यास गुरु बताता है, उसी को करते हैं।

जब आत्मा दयाल देश से उतरती हुई इस पिण्ड देश (मनुष्य शरीर) में आयी तो जिस-जिस चक्र पर ठहरी वहाँ पर एक शब्द हुआ और एक-एक प्रकाश। इस तरह अठारह चक्र बने। अब स्वाभाविक तरीक़ा यह है कि जिस रास्ते से यह आई उसी रास्ते से वापिस ऊपर को जावे। शब्द को सुनना या प्रकाश को देखना और अपनी सुरत को ठहरा-ठहरा कर ऊपर चढ़ाते जाना ही सन्तों का 'सुरत शब्द योग' है। तीन तरह से बहुधा हम दुनियाँ में फँसते हैं - देखकर, सुनकर और सूँघकर। अतः इनसे सम्बन्धित इन्द्रियों (आँख, कान, नाक) पर ताला लगा दो और इनका मुँह अन्दर की ओर फेर दो। अन्तर का शब्द सुनो और अन्तर का प्रकाश देखो। धीरे-धीरे अभ्यास करके प्रकाश पर अपनी तवज्जह (सुरत) को जमाओ लेकिन इसमें फँसो मत क्योंकि यह भी रास्ते की चीज़ें हैं। अपनी चढ़ाई जारी रखो जब तक कि धुर-धाम में न पहुँच जाओ। यदि सचमुच तुमने सच्चे गुरु का सहारा पकड़ लिया है तो वह तुम्हें धुर-धाम में पहुँचा कर छोड़ेंगे। ऐसे महापुरुष का तो केवल ध्यान करने से ही उसके सब गुण स्वतः ही तुम में उतरते चले आयेंगे और एक दिन तुम वही बन जाओगे जो वह स्वयं हैं।

अगर कोई शिष्य मौअद्दीब (सत्गुरु में पूर्ण निष्ठां रखने वाला, पूर्ण आदर करने वाला, जो उनको प्रतिक्षण हाज़िर नाज़िर जाने, एक क्षण के लिए भी ग़ाफिल न हो) है तो उसके लिए कुछ भी करने धरने की ज़रूरत नहीं है। वह एक क्षण के गुरु-प्रेम में ही सब कुछ पा लेता है। 'शब्द' क्या है ? 'शब्द" वह आवाज़ है जो धुर-धाम से आई है। शब्द से ही दुनियाँ पैदा हुई और शब्द में ही लय हो जाती है। जो मुँह से उच्चारण हो वह शब्द नहीं है, 'नाम' है। यों तो चिड़ियों का चहचहाना भी शब्द है लेकिन सन्तों ने 'शब्द' उसी को कहा है जो आपके ख़्याल (सुरत) को आकर्षित रखे, अन्तःकरण की ओर ले जाय, ईश्वर के ध्यान में लीन करा दे, जहाँ आपको आनन्द ही आनन्द मिले।

घर के कामों में कम दखल दीजिये। जितना कम दखल दोगे उतना ही आराम में रहोगे। आदमी के सुधारे कुछ नहीं सुधरता यह काम इश्वर के हाथ में है।

परमसन्त डा० श्री कृष्ण लाल जी महाराज ।

सागर के मोदी

ईश्वर प्राप्ति के दो ही सरल रास्ते हैं - एक 'प्रेम' और दूसरी 'दीनता' । जिस साधन से यह दोनों बातें न हों वह रास्ता ग़लत है ।

दूसरों के कथित अवगुणों की ओर ध्यान नहीं देना चाहिए । अपनी त्रुटियाँ देखनी चाहिए और उनका सुधार करना चाहिए । इससे दीनता आती है।

जीवन के प्रत्येक व्यहार करते समय यह खयाल रखना चाहिए कि मेरी जग़ह गुरु ने ले ली है। यही सहज-योग है ।

कोई भी कम जो ईश्वर से दूर ले जाय 'पाप' है। जो कर्म ईश्वर की नज़दीकी हासिल करने में सहायक हो, वही 'पुण्य' है ।

भोगने की वनिस्बत भोगने की इच्छा ज़्यादा नुकसान करती है।

किसी स्त्री के मुंह की ओर मत देखो, पैरों की ओर देखो

परमसंत महात्मा श्रीकृष्ण लाल जी